अक्तूबर-दिसंबर, 2022
जनवरी-मार्च, 2023

वर्ष 29
अंक : 113-114

2022-23

ISSN : 0976-0024

अमृत महोत्सव अंक

महिला
Mahila

विधि भारती
Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

ISSN 0976-0024
9 770976 002001

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

प्रधान संपादक
सन्तोष खन्ना
संपादक
डॉ. उषा देव

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India
Citation No. MVB-29/2022-2023

विधि भारती परिषद्
बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272, **फ़ोन :** 011-45579335
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com, santoshkhanna25@gmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

'महिला विधि भारती' पत्रिका (पूर्व यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल, क्र. 156, पत्रिका संख्या 48462)

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका

E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com

Website : www.vidhibharatiparishad.in

वर्ष 29, अंक : 113-114, (अक्तूबर-दिसंबर, 2022; जनवरी-मार्च, 2023)

प्रधान संपादक : सन्तोष खन्ना, **संपादक :** डॉ. उषा देव

बोर्ड ऑफ रेफरीज़ एवं परामर्श मंडल

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. प्रो. (डॉ.) सिद्धनाथ सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

परिषद् की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
4. रेनू (कोषाध्यक्ष)
5. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
6. डॉ. प्रेमलता (सदस्य)
7. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
9. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)
10. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
11. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
12. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
13. डॉ. उमाकांत ख़ुबालकर (सदस्य)
14. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)

शुल्क दर

वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए

आजीवन शुल्क 5,000/-- रुपए

संस्थागत वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए

संस्थागत आजीवन शुल्क 20,000/-- रुपए

डाक शुल्क अलग

अंक 113-114 में

1. आपके विचार / **डॉ. पुष्पलता तनेजा** -- 306
2. संपादकीय / -- 307
3. लोक सभा का उपाध्यक्ष : पद एवं दायित्व / **सतीश चंद्र रस्तौगी** -- 311
4. पुरुष सत्ता से उन्मुक्ति का निर्णय / **डॉ. निरुपमा अशोक** -- 313
5. आरक्षण का नया दौर : ईडब्ल्यूएस आरक्षण (जनहित अभियान वाद) के विशेष संदर्भ में एक विधिक विश्लेषण / **प्रो. (डॉ.) राकेश कुमार सिंह** -- 316
6. युवा वर्ग और नशा/ **डॉ. मनीषा यादव** -- 332
7. गर्भपात (लघुकथा) / **मनमोहन कालरा** -- 333
8. अस्पृश्यता क़ानून : वर्तमान दशा एवं भावी दिशा / **डॉ. चंद्र प्रकाश** -- 334
9. स्वतंत्रता सेनानियों में सिरमौर : सुभाष चंद्र बोस / **सन्तोष खन्ना** -- 342
10. एक छोटी सी बहर... एक ग़ज़ल / **नंदल हितैषी** -- 346
11. विश्व-विजयी भारत की महिला राष्ट्रपति रीमती द्रोपदी मुर्मू / **रेनू माथुर** -- 347
12. बहादुरशाह ज़फ़र पर मुकदमा अंग्रेज़ों का न्यायिक छलावा अथवा न्यायप्रियता / **डॉ. भगवानदास** -- 350
14. माँ मुझको जन्म लेने दो (कविता) / **अंकुर सिंह** -- 359
13. व्यक्तित्व की त्रिवेणी अटल जी / **अर्चना प्रकाश** -- 360
15. लैंगिक समानता के लिए उभरती लैंगिक व्यवस्थाएँ और नीतियाँ / **प्रो. मुक्ता त्रिपाठी** -- 362
16. Acid Attack : A Legal Analysis / **Neha Rathee** – 369
17. A Study of NDPS Act Relating to Control and Regulation of Drugs and Alcoholism in India **/ Yashasavi Singh** -- 377
18. Punishment Policy in India : In the Light of a New Track for Capital Punishment **/ Dr. Dinesh Babu** -- 384
19. Use of EVM in voting process: Features & Safety of Electronic Voting Machine **/ Meenu Kumari** -- 394
20. Expeditious Criminal Justice :Urgently Needed / **Satyam Chansoriya** -- 399

आपके विचार

आदरणीय श्रीमती खन्ना जी,

नमस्कार!

विधि भारती का अक्तूबर-दिसंबर 2008, अंक 56 प्राप्त हुआ। धन्यवाद। पाठ्य-सामग्री हमेशा की भाँति स्तरीय है, यह देखकर प्रसन्नता हुई। हिंदी भाषा में ऐसी पत्रिकाएँ बहुत कम हैं। इस अंक की संपादकीय की भाषा से मैं विशेष रूप से प्रभावित हूँ क्योंकि यह भाषा संपादक की परिपक्वता दर्शाती है। उपमा के लिए लिखे गए कुछ वाक्य अति सराहनीय हैं, यथा -- पाकिस्तान से किसी तरह की उम्मीद रखना मरु में मछलियाँ पकड़ने जैसा होगा (पृ. 362)। अपने घर को शीशे का नहीं पत्थर का बना लीजिए (पृ. 363)। पत्रिका के विशेषांकों सहित सभी अंक संग्रहणीय होते हैं। मेरे जैसे पाठकों को तो आपके सुंदर और परिपक्व विचारों से बहुत कुछ सीखना है। आप जैसी बहुमुखी प्रतिभा की धनी संपादक को मेरी ओर से अनेक-अनेक शुभकामनाएँ। भविष्य में भी पत्रिका के अंक इसी प्रकार विषय और भाषा की दृष्टि से पठनीय और स्तरीय सामग्री सँजोए होंगे, ऐसी आशा है।

पुनश्च : प्रशासन में रहते हुए मैंने अपनी डायरी में 'सूचना का अधिकार' विषय पर कुछ नोट लिया था आपको अवलोकनार्थ भेज रही हूँ।

आपकी

डॉ. पुष्पलता तनेजा

पूर्व निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय,

पूर्व निदेशक, राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद,

पूर्व अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

(उच्चतर शिक्षा विभाग) मानव संसाधन विकास मंत्रालय

स्थायी पता : एन-9, प्रथम तल, ग्रेटर कैलाश, पार्ट-1

नई दिल्ली-110048

मोबाइल : 9868984894

संपादकीय

नए वर्ष 2023 की शुरुआत उच्चतम न्यायालय के एक ऐसे फ़ैसले से हुई जिसे देश में कुछ लोग सालों से एक मुद्दा बनाए हुए थे। 8 नवंबर, 2016 को प्रधानमंत्री मोदीजी ने समूचे देश में नोट बंदी लागू कर दी थी। उन्होंने उस समय 500 और 1000 रुपए के नोटों के चलन को समाप्त कर दिया था और उनके स्थान पर 500 और 2000 के नए नोट जारी कर दिए थे। उस समय की सरकार ने इस नोट बंदी के फ़ैसले को उचित ठहराते हुए कहा था कि नोटबंदी एक बहुत ही सोच विचार कर के लिया गया फ़ैसला है और यह जाली नोट, आतंकवाद के वित्त पोषण, काले धन और टैक्स चोरी जैसी समस्याओं से निपटने की बड़ी रणनीति का हिस्सा है। आमतौर पर लोगों ने प्रधानमंत्री मोदी जी के नोट बंदी लागू किए जाने के फ़ैसले का स्वागत किया था परंतु कांग्रेस अथवा विपक्ष सहित कुछ लोग इस फ़ैसले का आरंभ से ही विरोध करते आ रहे हैं। कोई इसकी प्रक्रिया पर प्रश्न उठा रहा था तो कोई सरकार विशेष रूप से प्रधानमंत्री मोदी जी की मंशा पर ही प्रश्नचिन्ह लगा रहा था। अंततः यह मामला देश की सर्वोच्च न्याय संस्था उच्चतम न्यायालय में पहुँच गया। उच्चतम न्यायालय ने नोटबंदी के विरोध में फाइल की गई 58 याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए केंद्र सरकार और रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया को नोटिस जारी कर इसका जवाब मांगा। कुल मिलाकर इस मामले की सुनवाई 7 दिसंबर, 2022 तक पूरी हो गई और उच्चतम न्यायालय ने इस मुद्दे पर अपना फ़ैसला सुरक्षित रखा। उसी मुद्दे पर नए वर्ष के प्रथम दिन उच्चतम न्यायालय ने नोट बंदी पर अपना फ़ैसला सुनाते हुए नोटबंदी के फ़ैसले को सही ठहराया।

इस मुद्दे की उच्चतम न्यायालय में सुनवाई एक पाँच-सदस्यीय संवैधानिक पीठ ने की थी और फ़ैसला इस पाँच जजों की बेंच ने 4:1 से सुनाते हुए नोटबंदी को सही ठहराया है। न्यायमूर्ति अब्दुल नजीर की अध्यक्षता वाली पाँच न्यायाधीशों की बेंच में न्यायधीश न्यायमूर्ति बी.आर. गवई ने बहुमत के फ़ैसले को पढ़कर सुनाया। इस फ़ैसले पर न्यायमूर्ति अब्दुल नजीर, ए.एस. बोपन्ना, बी.अर.गवई, और वी. रामसुब्रमण्यम् ने पक्ष में फ़ैसला दिया जबकि पाँचवी न्यायधीश न्यायमूर्ति बी.वी. नागरत्ना ने अपना विम्मत फ़ैसला सुनाया। इसमें उन्होंने माना कि रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की धारा 26 (2) का पूरी तरह पालन किए बिना नोट बंदी लागू कर दी गई थी। उनका कहना था कि संसद को क़ानून बनाकर नोटबंदी लागू करनी चाहिए थी।

उच्चतम न्यायालय में जो 58 याचिकाएँ फाइल की गई थी उनमें याचिकाकर्ताओं ने कहा था --

- नोटबंदी के लिए सरकार ने जो प्रक्रिया अपनाई, उसमें खामियाँ थीं और उसे रद्द किया जाना चाहिए। ये सबसे ख़तरनाक फ़ैसला था, जिसने देश के क़ानून का मजाक बनाकर रख दिया था।
- सरकार तभी नोटबंदी कर सकती है जब आरबीआई के सेंट्रल बोर्ड की ओर से इसकी सिफ़ारिश की जाए। सरकार ने अहम दस्तावेज़ भी नहीं दिखाए, जिसमें 7 नवंबर को आरबीआई और सरकार के बीच हुई बैठक और आरबीआई की बोर्ड मीटिंग से जुड़े दस्तावेज़ भी शामिल थे।

उच्चतम न्यायालय की पीठ के फ़ैसले में कहा गया है कि 8 नवंबर, 2016 की अधिसूचना में कोई त्रुटि नहीं है और सभी सीरीज के नोट वापस लिए जा सकते हैं। नोटबंदी करते समय अपनाए गई प्रक्रिया में कोई कमी नहीं थी इसलिए उस अधिसूचना को रद्द करने की कोई ज़रूरत नहीं है। फ़ैसले में कहा गया है रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया को स्वतंत्र शक्ति नहीं कि वह बंद किए गए नोटों को वापस लेने की तारीख़ बदल दे। केंद्र सरकार रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की सिफ़ारिश पर इस तरह का निर्णय ले सकती है। फ़ैसले में यह भी कहा गया कि न्यायपालिका को सरकार की आर्थिक नीतियों पर दखल देने का बहुत सीमित अधिकार है। फ़ैसले में यह भी कहा गया कि भारतीय रिजर्व बैंक और केंद्र सरकार के बीच नोटबंदी के निर्णय लेने संबंधी 6 महीने तक से सोच-विचार चलता रहा इसलिए इस फ़ैसले को गलत नहीं ठहराया जा सकता। जहाँ तक लोगों को नोट बंदी हुई से कठिनाइयों का प्रश्न है यहाँ यह देखने की ज़रूरत है कि उठाए गए कदम का उद्देश्य क्या था? बहुमत के फ़ैसले को पढ़ते हुए न्यायमूर्ति बी.आर. गवई ने कहा कि नोटबंदी का उद्देश्य कालाबाजारी, आतंकवाद के वित्त पोषण, टैक्स चोरी रोकना आदि के साथ एक उचित संबंध बनता है। यह प्रसांगिक नहीं है कि नोटबंदी का उद्देश्य हासिल किया जा सका या नहीं, सरकार ने नोट बदलने के लिए 52 दिन की अवधि रखी थी जो अनुचित नहीं थी। केंद्र सरकार द्वारा प्रक्रिया अपनाई जाने के बारे में फ़ैसले में कहा गया कि भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 26(2) के अंतर्गत केंद्र सरकार को नोटों की किसी भी सीरिज को बंद करने का अधिकार है।

न्यायमूर्ति बी.वी. नागरत्ना ने अपने फ़ैसले में कहा कि केंद्र सरकार के इशारे पर नोटों की सभी सीरीज का विमुद्रीकरण बैंक के विमुद्रीकरण की तुलना में कहीं अधिक गंभीर मुद्दा है इसलिए इसे क़ानून के माध्यम से किया जाना चाहिए। न्यायधीश नागरत्ना ने यह भी कहा कि भारतीय रिजर्व बैंक ने स्वतंत्र दिमाग का इस्तेमाल नहीं किया है और केवल केंद्र की नोटबंदी के लिए केंद्र सरकार की इच्छा को मंजूरी दी है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने जो रिकॉर्ड पेश किया है उससे पता चलता है कि केंद्र सरकार की इच्छा के कारण पूरी कवायद महज 24 घंटे में पूरी कर ली गई।

इस नोट बंदी से पहले भी भारत में दो बार नोटबंदी की गई थी। एक बार नोटबंदी वर्ष 1946 में की गई थी जब भारत अभी आज़ाद नहीं हुआ था। यह नोटबंदी 12, जनवरी, 1946 को अंग्रेज़ी सरकार ने एक अध्यादेश जारी कर लागू की थी। उस समय 500, 1000 एवं 10,000 रुपए के नोटों का चलन बंद कर दिया गया था। आज़ाद भारत में पहली बार 1978 में भी नोटबंदी की गई थी। यह आज़ाद भारत की पहली नोटबंदी थी। इसे काले धन को खत्म करने के साथ भ्रष्टाचार को रोकने और अर्थव्यवस्था को मज़बूत बनाने के लिए किया गया था। तब भी जनता को इसके लिए कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। तब प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई थे और जनता पार्टी की गठबंधन की सरकार थी। उसने भी 1000, 5000 और 10,000 के नोटों का विमुद्रीकरण किया था। यह नोटबंदी भी एक अध्यादेश जारी कर की गई थी। भारत में जब यूपीए की सरकार थी तो उसने भी नोटबंदी करने का मन बनाया था किंतु उस समय भारतीय जनता पार्टी ने इसका विरोध किया था और भारतीय जनता पार्टी की सांसद मीनाक्षी लेखी ने कहा था कि नोटबंदी करने से उन लोगों को बहुत कठिनाई होगी जो बैंकों की सुविधाओं का लाभ उठाने की स्थिति में नहीं हैं।

नोटबंदी को सही ठहराने वाले उच्चतम न्यायालय के इस फ़ैसले का केंद्र सरकार ने स्वागत किया है किंतु स्पष्ट है कांग्रेसी तथा नोटबंदी का विरोध करने वाले लोगों को यह फ़ैसला पसंद नहीं आ रहा। उनका कहना है कि इस फ़ैसले से लोगों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था और अनेक लोग उस समय आर्थिक दृष्टि से बर्बाद हो गए थे। नोटबंदी जैसे कदमों से कुछ देर तक तो कठिनाइयाँ सामने आती ही हैं किंतु देश की अर्थव्यवस्था को स्वस्थ बनाने के लिए कई बार कुछ कठोर कदम उठाने पड़ते ही हैं। इस नोटबंदी के बाद भी कई दिनों तक बैंकों के सामने लंबी लंबी कतारें लगी रहती थी। उस समय यह भी कहा गया था कि काले धन वालों ने बड़ी चलाकी से अपना धन सफेद करने के लिए कई लोगों को हायर कर रखा था और उन्हें कुछ पैसा देकर ऐसे लोगों के माध्यम से अपना काला धन सफेद करा लिया था। प्रधानमंत्री मोदी ने उन दिनों ग़रीब लोगों के बैंकों में खाते खुलवा दिए थे। कुछ ऐसे ही लोगों के माध्यम से काले धन वालों ने अपना धन सफेद करवाया। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि उस समय भारतीय रिजर्व बैंक ने जितने भी नोट जारी कर रखे थे उनमें से अधिकांश नोट बैंकों के पास वापस आ गए किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि कुछ काला धन सामने आया ही नहीं था। प्रायः लोगों ने देखा था कि उन दिनों नोट इधर-उधर नालों में या कूड़ेदान पर बिखरे पड़े मिल जाते थे। फिर भी काले धन वालों ने बड़ी चालाकी से अपना काला धन बैंकों से सफेद करवा लिया था अन्यथा ग़रीब लोगों के पास इतना धन कहाँ से आया कि उन्हें रोज़-रोज़ बैंकों की लाइनों में लगना पड़ता रहा हो। नोटबंदी विरोधी लोग मेरी इस बात से बिल्कुल भी सहमत नहीं होंगे किंतु वस्तुस्थिति से इनक़ार नहीं किया जा सकता कि हर रोज़ ग़रीब लोग ही क्यों बैंकों की लाइन में लग रहे थे उनके पास इतने नोट कहाँ से आ रहे थे जिन्हें वह बदलवाने के लिए रोज़-रोज़ लाइनों में लग जाया

करते थे।

प्रश्न उठता है कि काला धन बाहर लाने के लिए क्या केवल नोटबंदी ही एकमात्र रास्ता है? नोटबंदी करने से पहले मोदी सरकार ने भी एक योजना निकाली थी जिसे आय घोषणा योजना, 2016 कहा जाता है। यह योजना 1 जून से सितंबर, 2016 तक चली थी जिसके अंतर्गत लोगों को स्वेच्छा से अपनी अघोषित आय और संपत्ति की घोषणा करनी थी। इस योजना के अंतर्गत इसमें गुजरात के अहमदाबाद के महेश साह नाम के एक व्यक्ति ने अकेले ही 178.6 बिलियन रुपए की संपत्ति की घोषणा की थी। इस योजना के अंतर्गत कुल 64275 लोगों ने 65250 करोड़ की अपनी आय और संपत्ति का विवरण दिया था जिस पर सरकार को 29362 करोड़ रुपए का राजस्व प्राप्त हुआ था। इससे पहले भी देश में एक बार स्वैच्छिक आय प्रकटीकरण योजना लागू की गई थी यह योजना वर्ष 1997 में तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदंबरम ने काले धन का पता लगाने के लिए वित्त अधिनियम, 1997 के अंतर्गत स्वैच्छिक आय प्रकटीकरण योजना लागू की थी। यह योजना 1 जुलाई, 1997 से 30 सितंबर, 1997 तक लागू रही। इस योजना के अंतर्गत 66 लाख लोगों ने योजना के अंतर्गत स्वैच्छिक रूप से अपनी आय और संपत्ति की घोषणा की थी इसमें 10050 करोड़ का सरकार को राजस्व प्राप्त हुआ था। जब कोई इस प्रकार अपनी अघोषित आय का पता बताता है तो उस पर आयकर संबंधी क़ानून के अंतर्गत कार्रवाई नहीं होती। हां, उन्हें निर्धारित कर राशि के साथ-साथ एक दांडिक राशि अवश्य देनी पड़ती है। 2016 में तत्कालीन वित्त मंत्री अरुण जेटली द्वारा लागू की गई योजना के अंतर्गत एक बड़ी धनराशि राजस्व के रूप में सरकार को प्राप्त हुई थी।

पिछले एक दो वर्ष के समाचार पत्रों और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से पता चलता है कि अभी भी कई लोगों ने काले धन की बड़ी-बड़ी धनराशि जमा कर रखी हैं जिनका समय समय पर पता चलता रहता है। पिछले वर्ष पश्चिम बंगाल सरकार के एक वर्चस्वी मंत्री के यहाँ से करोड़ों की नकदी मिली थी। यह अपने आप में एक अकेला मामला नहीं है। अभी हाल में रेलवे के एक सेवानिवृत्त कर्मचारी के यहाँ से करोड़ों की नकदी मिली है और बहुत सारा सोना भी मिला है। समय-समय पर आयकर विभाग द्वारा मारे जा रहे छापों में भी अकूत नकदी और सोना चाँदी मिलते रहते हैं। पिछले वर्ष मुंबई में भी एक ऐसा ही मामला सामने आया था जहाँ अकूत धन और सोना चाँदी प्राप्त हुआ था। इससे पता चलता है कि काला धन देश से कभी समाप्त नहीं होता। अगर सरकार उचित समझे तो वह वर्ष 2023 में भी स्वैच्छिक आय प्रकटीकरण योजना अथवा स्वैच्छिक आई योजना पुनः लागू कर सकती है ऐसा करने से काफी काला धन सरकार के ख़ज़ाने में वापस आ सकता है जिसका उपयोग सामाजिक कल्याण के लिए किया जा सकता है।

❑

सतीश चंद्र रस्तौगी

लोक सभा का उपाध्यक्ष : पद एवं दायित्व

राज्य सभा के उप सभापति एवं लोक सभा के उपाध्यक्ष, संसद के ये ऐसे दो पद हैं जो आम जनता तो क्या साधारण परिस्थितियों में मीडिया का भी ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पाते। वर्तमान लोक सभा में उपाध्यक्ष के रिक्त पद ने न केवल सबका ध्यान अपनी ओर खींचा है वरन मामला दिल्ली उच्च न्यायालय के द्वार तक जा पहुँचा है।

1950 में भारतीय संविधान के लागू होने से अब तक लोक सभा के उपाध्यक्ष के पद की आवश्यकता व महत्ता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। संभवतः यही कारण है कि वर्तमान लोक सभा में उपाध्यक्ष के रिक्त पद का मामला न्यायालय तक जा पहुँचा है।

भारतीय संविधान के अनुछेद 93 के अनुसार लोक सभा यथा शीघ्र, अपने दो सदस्यों को क्रमशः अपना अध्यक्ष व उपाध्यक्ष चुनेगी।

वर्तमान लोक सभा ने अध्यक्ष का चुनाव तो कर लिया पर उपाध्यक्ष का चुनाव अभी तक नहीं किया है। चूँकि मामला न्यायालय के न्याय निर्णयन की प्रतीक्षा कर रहा है। अतः इस लेख में इस संबंध में कोई चर्चा नहीं करेंगे। अध्यक्ष के निर्वाचन की तिथि राष्ट्रपति द्वारा नियत की जाती है। इस तिथि की सूचना सभी सदस्यों को दी जाती है।

इसके विपरीत उपाध्यक्ष के निर्वाचन की तिथि अध्यक्ष द्वारा नियत की जाती है। पर वास्तव में इस तिथि का सुझाव सरकार की ओर से आता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अध्यक्ष व उपाध्यक्ष के निर्वाचन का कार्य सरकारी कार्य के लिए नियत समय में संपन्न किया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अध्यक्ष का इसमें कोई विशेष योगदान नहीं है।

यहाँ पर यह प्रश्न उठता कि क्या सदन का कोई सदस्य अध्यक्ष से उपाध्यक्ष के निर्वाचन की तिथि नियत करने का अनुरोध करते हुए कोई संकल्प सदन में प्रस्तुत कर सकता है। लोक सभा के नियम किन्हीं शर्तों के अधीन ग़ैर-सरकारी सदस्यों को संकल्पों की सूचना देने का अधिकार प्रदान करते हैं। इनके निस्तारण की विशेष प्रक्रिया है जो काफी जटिल है। अतः यह आवश्यक नहीं कि किसी ग़ैर-सरकारी सदस्य का इस संबंध में प्रस्तुत संकल्प सदन के सम्मुख विचार के लिए आ जाए और वह सदन में पारित भी हो जाए। ग़ैर-सरकारी सदस्यों से अभिप्राय हर उस सदस्य से है जो मंत्री मंडल का सदस्य नहीं है भले ही वह सत्ता पक्ष का हो या विपक्ष का। इन दोनों पदों के लिए निर्वाचन की शेष प्रक्रिया एक समान है।

सामान्यतः लोक सभा उपाध्यक्ष का कार्यकाल उसके चुनाव की तिथि से लोक सभा के

विघटन तक होता है। वह अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है। उसे सदन में सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा पद से हटाया जा सकता है।

उपाध्यक्ष वेतन एवं भत्ते पाने का अधिकारी होता है। उसका वेतन एवं भत्ते भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं। अभिप्राय यह है कि उन पर सदन में चर्चा तो हो सकती है पर मतदान नहीं हो सकता। वह लोक सभा का पूर्णकालिक अधिकारी होता है। वह अपने कार्यकाल के दौरान कोई व्यवसाय, वृत्ति या निजी प्रैक्टिस नहीं कर सकता।

उपाध्यक्ष, लोक सभा की बैठक से अध्यक्ष की अनुपस्थिति में बैठक की अध्यक्षता करता है। वह अध्यक्ष के अधीन नहीं होता। वह एक स्वतंत्र पदाधिकारी होता है और वह केवल सदन के प्रति उत्तरदायी होता है। जब वह सदन की बैठक की अध्यक्षता कर रहा होता है तब उसकी वही शक्तियाँ होती हैं जो सदन में पीठासीन होते समय अध्यक्ष की होती हैं। उसके द्वारा सदन की अध्यक्षता करते समय दिए गए निर्णय अंतिम होते हैं, उनके विरुद्ध अध्यक्ष को अपील नहीं की जा सकती।

संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भी लोक सभा अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष बैठक की अध्यक्षता करता है। उपाध्यक्ष लोक सभा की कई समितियों का पदेन सभापति होता है। वह संसद की ग्रंथालय समिति का भी पदेन सभापति होता है। लोक सभा एवं लोक सभा सचिवालय की अनुदान माँगों पर विचार करने के लिए गठित बजट समिति का सभापतित्व भी उपाध्यक्ष ही करता है।

अतीत में अनेक अवसरों पर अध्यक्ष की मृत्यु या त्याग-पत्र के कारण अध्यक्ष का पद रिक्त होने पर, नए अध्यक्ष का चुनाव होने तक, अध्यक्ष के दायित्वों को लोक सभा उपाध्यक्ष द्वारा ही निभाया गया। इन दायित्वों में धन विधेयक को प्रमाणित करना, दोनो सदनों द्वारा पारित विधेयकों को, जो लोक सभा के वश में थे, राष्ट्रपति को स्वीकृति के लिए भेजने से पूर्व आवश्यक प्रमाण-पत्र देना आदि शामिल थे।

इस पूरे विवरण से स्पष्ट है कि लोक सभा उपाध्यक्ष का पद महज एक अलंकरण या शोभा का पद नहीं है. यह एक संवैधानिक पद है जिसके निश्चित एवं निर्धारित दायित्व हैं।

संसद परंपराओं का सृजन करती है और उन्हीं के अनुसरण में अपना कार्य संचालन करती है। समय-समय पर आवश्यकता पड़ने पर विधानसभाएँ भी प्रक्रिया संबंधी प्रश्नों का निपटारा करते समय प्रायः इन परंपराओं का उद्धरण देती हैं। इस प्रकार लोक सभा के उपाध्यक्ष का रिक्त पद भविष्य में एक उदाहरण बन सकता है।

❑

संदर्भ

1. भारत का संविधान
2. लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम
3. प्रैक्टिस एंड प्रोसिड्योर ऑफ पार्लियामेंट (कौल एवं शकधर)

डॉ. निरुपमा अशोक

पुरुष सत्ता से उन्मुक्ति का निर्णय

सुप्रीम कोर्ट ने एक ऐतिहासिक फ़ैसले **एक्स बनाम प्रिंसिपल सेक्रेटेरी, हेल्थ एंड फैमिली वेलफेयर** में अभिनिर्धारित किया है कि विवाहित तथा अविवाहित, सभी महिलाओं को सुरक्षित तथा क़ानूनी गर्भपात का अधिकार है तथा वह गर्भ ठहरने के 24 सप्ताह तक कराया जा सकता है। शीर्ष न्यायालय का कहना है कि लिव-इन रिश्ते में रहने वाली, एकाकी, विधवा, परित्यक्ता, दुष्कर्म पीड़िता, दिव्यांग और नाबालिग आदि सभी को इस हेतु समान अधिकार हैं। कोर्ट ने निर्णय दिया है कि विवाहित तथा अविवाहित का भेद कृत्रिम, अतार्किक तथा अवैज्ञानिक है तथा क़ानून के समक्ष समता के सिद्धांत के प्रतिकूल होने के कारण अविधिमान्य है।

भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्तिगण डी.वाई. चंद्रचूड़, ए.एस. बोपन्ना तथा जे. बी. परदावाला की पीठ ने स्त्री-स्वातंत्र्य विधिशास्त्र में एक अत्यंत प्रगतिशील अध्याय जोड़ते हुए यह फ़ैसला 25 वर्षीया एक अविवाहिता की अपील पर दिया जिसमें उसने 24 सप्ताह के गर्भ को गिराने की अनुमति चाही थी। दिल्ली हाई कोर्ट ने अपने प्रारंभिक क्षेत्राधिकार में दायर की गई रिट याचिका को ख़ारिज कर दिया था क्योंकि महिला ने स्वयं कहा था कि वह सहमति से बनाए गए संबंध के चलते गर्भवती हुई थी। सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली हाई कोर्ट के आदेश को पलटते हुए व्यवस्था दी कि महिलाएँ अपने शरीर की पूर्णता तथा स्वायत्तता की हक़दार हैं, उन्हें प्रजनन का अधिकार है तथा इस संबंध में वे स्वयं निर्णय लेने में सक्षम और समर्थ हैं।

उक्त निर्णय इसलिए और महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अभी इसी वर्ष मई 2022 में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने अपने पचास वर्ष पूर्व दिए गए उस निर्णय को पलट दिया है जिसके द्वारा वहाँ की महिलाओं को गर्भपात के अधिकार को सांविधानिक मान्यता दी गई थी। दरअसल 22 जनवरी, 1973 को **रो बनाम वेड** के निर्णय में कोर्ट ने फ़ैसला दिया था कि महिलाओं को गर्भपात का अधिकार है जो उनकी निजता व गरिमा से जुड़ा हुआ है तथा प्रजननात्मक स्वायत्तता का अभिन्न अवयव है। मई में दिए गए फ़ैसले पर वहाँ प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई है तथा नारी स्वातंत्र्य से जुड़े संगठन गर्भपात को मान्यता देने के लिए क़ानून बनाने की माँग कर रहे हैं। ज्ञातव्य है कि वहाँ कई प्रांतों में गर्भपात ग़ैर-क़ानूनी घोषित है।

भारत में गर्भपात को नियंत्रित करने हेतु गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम, 1971 लागू है लेकिन यह सभी स्त्रियों को प्रत्येक परिस्थिति में गर्भपात की अनुमति नहीं देता। नारी

संगठनों की माँग पर 2021 में संशोधन कर इसमें विवाहित होने की शर्त हटा दी गई थी तथा अवधि भी 24 सप्ताह कर दी गई थी लेकिन सहमति से बनाए गए संबंधों पर यह गर्भपात की अनुमति नहीं देता था। इस बीच, उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय में कई याचिकाएँ डाली गईं जिनमें कतिपय कारणों से गर्भपात की अनुमति चाही गई थी। सुप्रीम कोर्ट के ताजा निर्णय से स्थिति स्पष्ट हो गई है तथा इस हेतु अब सरकारी या मान्यता-प्राप्त अस्पतालों में यह सुविधा उपलब्ध होगी। कोर्ट ने यह भी निर्देशित किया है गर्भपात कराने की इच्छुक महिला से अनावश्यक प्रश्न न पूछे जाएँ तथा उसकी गोपनीयता बनाए रखी जाए।

सुप्रीम कोर्ट ने इस अहम तथा दूरगामी प्रभाव वाले फ़ैसले में यह भी कहा है कि पत्नी को ज़बरन गर्भवती करना वैवाहिक दुष्कर्म (रेप) माना जाना चाहिए और ऐसे मामलों में भी महिला 20 से 24 सप्ताह तक गर्भ का समापन करा सकती है। शीर्ष अदालत ने कहा है कि ऐसी महिला को बलात्कार पीड़ित या रेप सरवाईवर की श्रेणी में रखा जाएगा। वह चिकित्सकीय गर्भ समापन अधिनियम के अंतर्गत चौबीस सप्ताह की अवधि में गर्भ को समाप्त करने की माँग कर सकती हैं। यहाँ कोर्ट ने यह भी स्पष्ट किया कि यह आदेश सिर्फ गर्भपात कराने तक ही सीमित रहेगा तथा इसे अपराध नहीं माना जाएगा न ही इसके बारे में कोई आपराधिक शिकायत ही की जा सकेगी।

यह फ़ैसला इस मामले में अहम है कि सुप्रीम कोर्ट वर्तमान में भारतीय दंड संहिता की धारा 375 (बलात्संग) के एक अपवाद (2) की सांविधानिकता को चुनौती देने वाली याचिकाओं पर विचार कर रहा है,जो वैवाहिक बलात्कार को बलात्कार के अपराध से छूट देता है। पीठ ने स्पष्ट किया है कि हम यह नहीं कह रहे हैं कि वैवाहिक बलात्कार अपराध है लेकिन स्त्री की प्रजननात्मक स्वायत्तता उसकी शारीरिक स्वायत्तता का अभिन्न अवयव है। जस्टिस चंर्द्चूड़ ने कहा, विवाहित महिलाएँ भी यौन हिंसा का हिस्सा बन सकती हैं। बलात्कार का सामान्य अर्थ बिना सहमति या इच्छा के विरुद्ध किसी व्यक्ति के साथ यौन संबंध बनाना है भले ही इस प्रकार बना ज़बरन संबंध विवाह के संदर्भ में हो या न हो। एक महिला, पति द्वारा किए गए बिना सहमति संभोग के परिणाम स्वरूप गर्भवती हो सकती है। पीठ ने वैवाहिक परिवेश में हिंसा को कठोर वास्तविकता बताया और कहा, यदि हम इसे नहीं स्वीकारेंगे तो हम चूक जाएँगे। यह गलत धारणा है कि अजनबी ही यौन हिंसा के लिए उत्तरदाई हैं। दहेज प्रतिषेध अधिनियम, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम तथा लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम समेत कई क़ानूनों में पारिवारिक हिंसा के विभिन्न रूपों के निदान के प्रावधान मौजूद हैं।

उच्चतम न्यायालय ने सांविधानिक पहलुओं की व्याख्या करते हुए अभिनिर्धारित किया कि प्रजननात्मक स्वायत्तता, निजता, समता तथा गरिमा पूर्ण जीवन जीने का अधिकार प्रत्येक महिला में अंतर्निहित है जिसे सांविधानिक संरक्षण प्राप्त है। इसी परिप्रेक्ष्य में गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम के प्रावधानों का निर्वचन किया जाना चाहिए। मूलतः इस अधिनियम में गर्भ निरोध उपायों का असफल हो जाने, लैंगिक हिंसा का शिकार होने तथा संबंधित स्त्री या

उसके गर्भ में पल रहे भ्रूण में कोई दोष होने पर ही बीस सप्ताह तक गर्भपात अनुमत था। **एस. ख़ुशबू बनाम कन्नाइम्मल** (2010) के वाद में सुप्रीम कोर्ट की ही तीन जजों की बेंच ने निर्णय दिया था कि विवाह पूर्व सेक्स तथा लिव-इन रिश्तों का अपराधीकरण नहीं किया जाना चाहिए। कई देशों में लिव-इन रिश्तों को क़ानूनी जामा पहनाया जा चुका है लेकिन भारत में अभी स्थिति स्पष्ट नहीं है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि न्यायालयों ने बिना पति की सहमति से गर्भपात कराने के पत्नी के अधिकार को मान्यता दे रखी है तथा अब इसे वैवाहिक क्रूरता की श्रेणी में नहीं गिना जाता है। इस आधार पर पति को विवाह-विच्छेद का अधिकार नहीं है। मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 में विवाहित या अविवाहित महिला का विभाजन समाप्त कर दिया गया है। हिंदू दत्तक तथा भरणपोषण अधिनियम, 1956 में सभी महिलाओं को दत्तक गृहण का अधिकार है। संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 में हर एक स्त्री को संरक्षक बनने का क़ानूनी अधिकार है। **गीता हरिहरन बनाम रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया** (1999) के वाद में सुप्रीम कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया था कि पिता के जीवित रहते हुए माता भी नैसर्गिक अभिभावक है अर्थात् दत्तकगृहण, उत्तराधिकार, विवाह तथा मातृत्व लाभ प्राप्त करने में सभी स्त्रियों को निर्णय लेने का समान अधिकार है। अतः गर्भपात कराने में भी उनके अधिकारों को मान्यता देना अपरिहार्य है।

के.एस. पुत्तास्वामी बनाम भारत संघ (2018) के निर्णय में सुप्रीम कोर्ट की नौ-जजों की बेंच ने निजता के अधिकार को संविधान के प्राण तथा दैहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार का अंग करार दिया है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने शरीर तथा मस्तिष्क पर स्वायत्तता बरकरार रखने के लिए समर्थ बनाने हेतु निजता के अधिकार को आवश्यक बताया गया था। इसी क्रम में **नवतेज सिंह जोहर बनाम भारत संघ** (2018) के वाद में सुप्रीम कोर्ट ने भारतीय दंड संहिता की धारा 377 (समलैंगिकता) को असाँविधानिक बताते हुए निर्णय दिया था कि यह धारा मानवीय गरिमा, निर्णयात्मक स्वायत्तता और निजता के मौलिक अधिकार का अतिक्रमण करती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने यौन अभिविन्यास चुनने, साहचर्य की तलाश करने और अपने निजी स्थान के भीतर इसका प्रयोग करने की स्वतंत्रता है।

उच्चतम न्यायालय ने 'सांविधानिक नैतिकता' को संविधान के आदर्शों और एक समवेशी समाज का निर्माण करने वाले मूल्यों के रूप में वर्णित किया। समाज को बदलने के लिए संविधान को एक उपकरण के रूप में मान्यता दी। न्यायालय का मानना है कि कोई प्रतिबंधात्मक प्रावधान मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है या नहीं, इस पर निर्णय सांविधानिक नैतिकता के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होना चाहिए न कि सामाजिक नैतिकता द्वारा। यह निर्णय भारत ही नहीं बल्कि अन्य राष्ट्रों के लिए अत्यधिक प्रेरक मूल्य रखता है जो इक्कीसवीं सदी में भी पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के तहत स्त्री-पुरुष के लिंग अभिविन्यास में विभेद करता है। पुरुष सत्ता से विमुक्ति का यह 'निर्णय' स्त्री अधिकारों में मील का पत्थर बन चर्चित हो रहा है।

❑

प्रो. (डॉ.) राकेश कुमार सिंह

आरक्षण का नया दौर : ईडब्ल्यूएस आरक्षण (जनहित अभियान वाद) के विशेष संदर्भ में एक विधिक विश्लेषण

भारत एक विशाल जनसंख्या वाला देश है जहाँ विभिन्न प्रकार के धर्मों, जातियों एवं समुदाय के लोग निवास करते है। उल्लेखनीय है कि जाति-व्यवस्था प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में व्याप्त थी जिसका उल्लेख वेदो, स्मृतियों इत्यादि में भी मिलता है, जिसके अनुसार चतुर्वर्ण प्रणाली हुआ करती थी जो क्रमशः ब्राहमण (पादरी/पंडित), क्षत्रिय (राजा), वैश्य (व्यापारी/जमीन मालिक) और शुद्र (सभी प्रकार के छोटे-मोटे काम करने वाले) होते थे। प्रथम तीन जातियॉ पूरे मान-सम्मान के साथ समाज में अपना जीवन-यापन करते थे परंतु शूद्र जाति के लोगों का जीवन अत्यंत कष्टकर व बंधुआ मजदूरों की तरह जीवन व्यतीत करते थे। उन्हें समाज में छुआछूत और अति निम्न वर्ग का दर्जा दिया गया था। उनके कोई अधिकार नहीं हुआ करते थे। कालांतर में इन्हीं का जीवन-स्तर ऊँचा करने हेतु अनेक प्रकार के संघर्ष हुए और अंततः भारतीय संविधान में भी उन्हें बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए अनेक प्रावधान करने पड़े जिसमें आरक्षण ने मुख्य भूमिका निभाई है। उच्चतम न्यायालय ने संविधान के 103वें संशोधन को विधिसम्मत करार करते हुए दिनांक 08.11.2022 को आर्थिक रूप से पिछड़े तबके के प्रत्याशियों को शिक्षा संस्थानों और सरकारी नौकरियों में 10 प्रतिशत आरक्षण पर अपनी मुहर लगा दी। इसी मामले को केंद्र में रखकर प्रस्तुत पेपर में आरक्षण के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

आरक्षण का अर्थ : आरक्षण का सामान्य अर्थ है, 'अपनी जगह सुरक्षित करना'। चाहे वह रेल का कोच हो, सुरक्षित सीट से चुनाव लड़ना हो, सरकारी विभाग में नौकरी पाना हो, हर किसी व्यक्ति की इच्छा होती है उस स्थान पर उस व्यक्ति का जगह सुरक्षित हो। इसकी दूसरी अवधारणा यह होती है कि यह सीट आसानी से उपलब्ध होती है क्योंकि इसमें संघर्ष कुछ ही लोगों के बीच होता है।

भारत में आरक्षण की व्यवस्था बहुत पुराने समय से ही चली आ रही है। कभी दलितों, कभी महिलाओं, कभी शारीरिक रूप से कमजोर इत्यादि का आरक्षण प्रारंभ से ही होता आ रहा है। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने सबसे पहले दलितों के हक में आवाज उठाई। भारतीय समाज में वर्ग व्यवस्था होने के कारण शुरू से ही समाज में दलितों पर अत्याचार होता रहा है। दलित और महिलाओं

की स्थिति काफी दयनीय होने के कारण उन्हें विशेष प्रकार के आरक्षण देने की आवश्यकता पड़ी। पुरानी व्यवस्था के अनुसार दलितों को अछूत मानते हुए तालाब, कुएँ इत्यादि के पानी, मंदिरों में प्रवेश से वंचित रखा गया था। इसी ऊँच-नीच की खाई को भरने के लिए ही अतिरिक्त व्यवस्था की आवश्यकता पड़ी। प्राचीन व्यवस्था के अनुकूल हिंदू समाज को चार वर्ग व्यवस्था में बॉटा गया था, जिसके अंतर्गत शुद्र का स्थान सबसे नीचे रखा गया था।

आरक्षण के उद्देश्य : जब व्यक्ति को उसके सामान्य अधिकार भी न मिले तब वह अपने विशेष अधिकारों का उपयोग करता है। आरक्षण का मुख्य उद्देश्य ही सभी को सभी क्षेत्र में समानता का अधिकार दिलाना है। किसी भी रूप से किसी के अधिकारों का हनन न होने पाए, और कोई अपने अधिकार का दुरूपयोग भी न करे, यह आरक्षण का मुख्य आधार है। आरक्षण को हम एक सुरक्षा कवच या विशेष अधिकार मान सकते है जिसके द्वारा उन लोगों के लिए, जिन पर शोषण हो रहा था, सभी को समानता व स्वतंत्रता से जीवन जीने के लिए आरक्षण की आवश्यकता पड़ी।

भारतीय संविधान में भारत में सरकारी सेवाओं और संस्थानों में प्रर्याप्त प्रतिनिधित्व नही रखने वाले पिछड़े समुदायों तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए भारत सरकार ने सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों की इकाईयों और धार्मिक/भाषाई अल्पसख्यक शैक्षिक संस्थानों को छोड़कर सभी सार्वजनिक तथा निजी शैक्षिक संस्थानों में पदों तथा सीटों के प्रतिशत को आरक्षित करने के लिए कोटा प्रणाली लागू की है।

आरक्षण का इतिहास

यदि भारत में आरक्षण के इतिहास को देखा जाए तो भारत में आरक्षण की शुरूआत 1882 में हंटर आयोग के गठन के साथ हुई थी। उस दौरान विख्यात समाज सुधारक महात्मा ज्योतिराव फुले ने सभी को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा तथा अंग्रेज़ सरकार की नौकरियों में आनुपातिक **आरक्षण/प्रतिनिधित्व** की माँग की थी। 1908 में अंग्रेज़ों के शासन काल में बहुत सारी जातियों और समुदाय को जिनका प्रशासन में थोड़ा-बहुत हिस्सा था, के लिए आरक्षण शुरू किया गया। 1909 और 1919 के भारत सरकार अधिनियम में भी आरक्षण का प्रावधान किया गया। 1921 में मद्रास प्रेसीडेंसी ने जातिगत सरकारी आज्ञापत्र जारी किया। इस पत्र में ग़ैर-ब्राहमणों में लिए 44 प्रतिशत, ब्राह्मणों के लिए 16 प्रतिशत, भारतीय एंग्लों/ईसाइयों के लिए 16 प्रतिशत और अनुसूचित जातियों के लिए 8 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई। 1935 के भारत सरकार अधिनियम, में भी आरक्षण का प्रावधान किया गया था। 1942 में बी.आर. अंबेडकर ने अनुसूचित जातियों की उन्नति के लिए अखिल भारतीय दलित वर्ग महासभा की स्थापना की। उन्होंने सरकारी सेवाओं और शिक्षा के क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण की मॉग की। उपरोक्त घटनाक्रमों के बाद भारत 15 अगस्त, 1947 को आज़ाद हुआ और 26 जनवरी, 1950 को भारत में संविधान लागू हो गया जिसके अंतर्गत सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करते हुए

सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए संविधान में विशेष अनुच्छेदों का प्रावधान किया गया है।

कालेलकर आयोग

1953 में सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए कालेलकर आयोग का गठन किया गया था। इस आयोग के द्वारा सौपी गई अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जनजातियों से संबंधित रिपोर्ट को सरकार ने स्वीकार कर लिया लेकिन अन्य पिछड़ी जातियों के लिए की गई सिफ़ारिशों को अस्वीकार कर दिया गया।

मंडल आयोग की रिपोर्ट

1979 में सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए मंडल आयोग की स्थापना की गई। जनता पार्टी की सरकार द्वारा नियुक्त मंडल आयोग की रिपोर्ट ने पूरे आरक्षण के मामले को और भी ज्यादा विवादास्पद बना दिया। इस आयोग का मत था कि भारत में पिछड़ेपन का प्रमुख आधार जाति है और इसे किसी भी तरह नजरअंदाज नही किया जा सकता है। इस आयोग ने पिछड़ी जातियों की एक भारी-भरकम सूची तैयार की और जाति के आधार पर आरक्षण की सिफ़ारिश की थी।[1] जातियों को चिन्हित करने का मंडल आयोग का पैमाना भी भ्रामक था। इस आयोग ने भारत की कुल आबादी के एक प्रतिशत का भी सर्वेक्षण नहीं किया था। उसने देश के हर जिले में सिर्फ दो गाँवों और शहर के एक मुहल्ले का सर्वेक्षण किया था। अंग्रेज़ों के जमाने में हुए जनसंख्या को आधार बनाया हालाँकि उसकी प्रश्नावली प्रमुख अंग्रेज़ी और स्थानीय भाषाओं में छपी और उसे कुल 1872 ही जबाव मिले। इस आयोग द्वारा तैयार की गई सूची में पिछड़े वर्गो का प्रतिशत भारत की कुल जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती थी और इस आयोग द्वारा सिफ़ारिश की गई कि केंद्रीय और राज्य सरकार की सेवाओं, सार्वजनिक नियोजनों और शैक्षिक संस्थाओं में 3743 पिछड़ी जातियों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण सुनिश्चित किया जाए।[2] इस आयोग की रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत किए जाने के बाद सन् 1980 में तात्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी तथा 1984 में तात्कालीक प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी द्वारा इसे ठंडे बस्ते में डाल दिया था परंतु 1989 की श्री वी.पी. सिंह की सरकार ने तमाम अन्य कारणों से इसको लागू कर दिया जिसके परिणामस्परूप पूरे भारत में बड़े पैमाने पर तोड़-फोड़ और आत्मदाह की घटनाएँ घटित हुई। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के छात्र सगठनों ने बडे पैमाने पर इसका विरोध किया और अंततः उच्चतम न्यायालय के आदेश द्वारा उसका प्रवर्तन रोक दिया गया।

उस समय युवाओ के उग्र प्रदर्शन के विरोध को कम करने के लिए तात्कालीक प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंहराव ने आर्थिक आधार पर आरक्षण का क़ानून बनाया था। सन् 1991 में श्री पी.वी. परसिम्हाराव सरकार ने मंडल की संस्तुतियों के अनुसार पिछड़े वर्गो के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण को तथा सवर्णों (ऊँची जातियों) को भी संतुष्ट करने के लिए उन्हें 10 प्रतिशत

आरक्षण आर्थिक आधार पर देने का सरकारी ज्ञापन जारी किया जिसे उच्चतम न्यायालय के समक्ष **इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ**[3] के वाद में चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय ने इस वाद में 27 प्रतिशत पिछड़े वर्गों को दिए गए आरक्षण को वैध माना लेकिन सवर्णों के लिए दिए गए 10 प्रतिशत आरक्षण को अवैध घोषित कर दिया साथ ही पूर्व निर्धारित वाद बालाजी[4] के मामले में प्रतिपादित आरक्षण की अधिकतम सीमा 50 प्रतिशत के नियम को वैध माना और स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता है। यहॉ यह भी उल्लेखनीय है कि सन् 1975 में केरल राज्य बनाम एनएम थामस[5]के वाद में उच्चतम न्यायालय की पाँच जजों की बेंच ने निर्णय दिया कि आरक्षण का प्रतिशत तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर तय किया जाएगा न कि किसी निश्चित सीमा के अंदर। हर किसी मामले में कोटे की सीमा किसी गणितीय सूत्र के आधार पर नहीं तय की जा सकती है। इसका मुख्य मकसद है कि सरकारी नौकरियों में और शिक्षा में यदि पिछड़े वर्ग को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल रहा है तो आरक्षण का प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है।

सन् 2006 में 93वें संविधान संशोधन से शिक्षा के अधिकार के अंतर्गत निजी क्षेत्र के कॉलेजों में आरक्षण के प्रावधान हुए थे। लेकिन निजी क्षेत्र की नौकरियों में आरक्षण के लिए संविधान में कोई प्रावधान नहीं है।

आरक्षण के पक्ष और विपक्ष में तर्क

यद्यपि आरक्षण के पक्ष और विपक्ष में कई तर्क एवं कुतर्क रखे जाते हैं जिनमें आरक्षण को बनाए रखने वालों का मानना है कि सदियों से गुलामी, शोषण और सामाजिक उपेक्षा का दंश झेलने वाली जातियों को केवल अनिवार्य आरक्षण से ही सम्मानजनक स्थान मिल सकता है। इसके समर्थक आरक्षण की कोई समय सीमा भी स्वीकार नहीं करना चाहते हैं जबकि आरक्षण के विरोधियों का मानना है कि जाति के आधार पर सीमाहीन आरक्षण से प्रतिभा, परिश्रम और कार्यकुशलता की हानि होती है। किसी भी देश की सफलता का आधार विशेषज्ञता और कार्यकुशलता है। इनका मानना है कि आरक्षण सामाजिक विघटन और जातीय द्वेष को बढ़ा रहा है।

जनहित अभियान बनाम भारत संघ[6] या ईडब्ल्यूएस आरक्षण वाद का विश्लेषण

उल्लेखनीय है कि सरकार/संसद ने सन् 2019 में 103वें संशोधन के माध्यम से सामान्य वर्ग के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए जिनकी सालाना आय आठ लाख तक है, उन्हें शिक्षण संस्थाओं में दाखिला और सरकारी नौकरियों में 10 प्रतिशत आरक्षण देने का प्रावधान किया है।

उच्चतम न्यायालय ने संविधान के 103वें संशोधन को विधिसम्मत करार करते हुए दिनांक 07.11.2022 को आर्थिक रूप से पिछड़े तबके के प्रत्याशियों को शिक्षा संस्थानों और सरकारी नौकरियों में 10 प्रतिशत आरक्षण पर अपनी मुहर लगा दी। इस वाद में पाँच न्यायाधीशों की

संविधानपीठ ने दो के मुकाबले तीन के बहुमत से सुनाए गए इस फ़ैसले के परिणामों के दूरगामी प्रभाव पड़ने की आशंका है। इसी संविधान संशोधन को 40 विभिन्न याचिकाओं के माध्यम से उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई थी। इस मामले में तीन प्रमुख विवाद बिंदु थेः

- क्या 103वाँ संविधान संशोधन संविधान के मूल ढाँचे का उल्लंघन करता है?
- क्या इस संशोधन में अनुसूचित जाति-अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों को इस आरक्षण से बाहर रखना संविधान की मूल भावना के विरूद्ध है?
- क्या उच्चतम न्यायालय द्वारा बालाजी और इंदिरा साहनी फ़ैसले से तय आरक्षण की 50 प्रतिशत की सीमा को पार करना संविधान के खिलाफ है?

उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान ने जब से आरक्षण के प्रावधान को शामिल व लागू किया गया है तब से ही इस संबंध में समय-समय पर विरोध के स्वर उठते रहे है। समाज का एक बड़ा तबका आरक्षण के सदैव विरोध में रहा है। अतः जब संसद ने 2019 में संविधान में संशोधन करके देश में सवर्ण ग़रीबों के लिए अलग से 10 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की तो स्वाभाविक रूप से उसके विरोध में आवाजें उठने लगी और उच्चतम न्यायालय में इसकों चुनौती देते हुए कई याचिकाएँ आना प्रारंभ हो गई।

इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने कई चीजों को पुनः स्पष्ट कर दिया जो संक्षेप में निम्न है :

1. अब तक यह माना जाता था कि देश में आरक्षण का आधार सिर्फ सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ापन ही है। किसी और आधार पर आरक्षण दिया ही नही जा सकता है। लेकिन इस वाद के फ़ैसले ने स्पष्ट कर दिया कि आरक्षण का आधार आर्थिक पिछड़ापन भी हो सकता है और इस आधार पर भी आरक्षण दिया जा सकता है।
2. इस मामले की दूसरी सबसे बड़ी बात है कि इसमें संविधान के लागू होने के समय से ही चली आ रही आरक्षण व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं किया गया है अर्थात् अनुसूचित जाति-अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछ़डे वर्गो के आरक्षण में कोई फेरबदल नहीं किया गया है। इसलिए नई व्यवस्था उनके हितों के प्रतिकूल है, ऐसा नहीं माना जा सकता है।
3. इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया कि संविधान निर्माताओं ने आरक्षण की एक समय सीमा तय कर दी थी लेकिन आज़ादी के 75 साल बीतने पर भी आरक्षण का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाया है। अब समाज के हित में इस पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।
4. बालाजी एवं इंद्रा साहनी वाद में उच्चतम न्यायालय ने आरक्षण की अधिकतम सीमा 50 प्रतिशत तय कर दी थी। बाद की तमाम सरकारों ने इसी आधार पर आरक्षण की तय सीमा में हस्तक्षेप नहीं किया लेकिन इस इडब्ल्यूएस मामले में उच्चतम न्यायालय ने इसे लचीला कर दिया और आर्थिक आधार पर दिए गए आरक्षण पर अपनी मुहर लगा दी।

ईडब्ल्यूएस के पक्ष में निम्न तर्क जजों द्वारा दिए गए

- जस्टिस दिनेश माहेश्वरी के अनुसार, 'आरक्षण वंचित वर्ग को समाज में शामिल करने में अहम भूमिका निभाता है, ईडब्ल्यूएस कोटा संविधान के मूल ढाँचे का न तो उल्लंघन करता है और न ही समानता के सिद्धांत को तोड़ता है। जस्टिस बेला त्रिवेदी के अनुसार, 'एससी.एसटी. और ओबीसी को संविधान द्वारा पहले से ही आरक्षण मिला हुआ है, आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को भी अलग वर्ग मानना सही होगा। इन्हे आरक्षण का लाभ देना संविधान का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है। जस्टिस जे.बी. पारदीवाला के अनुसार, 'ईडब्ल्यूएस कोटा सही है, पर इसे अनंतकाल तक नही बढ़ाया जाना चाहिए। आरक्षण किसी मसले का आखिरी हल नहीं हो सकता है। यह समस्या की समाप्ति की शुरूआत भर है। कुल मिलाकर इसके समर्थन में जजों ने स्पष्ट कर दिया कि आरक्षण एक सकारात्मक कदम है, जिसका उद्देश्य है, 'सभी का समावेश'। इसके अंतर्गत आर्थिक तौर पर पिछड़ों के समावेश की बात भी आती है। इसलिए इस आधार पर आरक्षण देना संविधान के मूलभूत ढाँचे का उल्लंघन नहीं है।
- कोर्ट ने यह भी कहा कि ईडब्ल्यूएस के लिए अलग कैटेगरी बनाया जाना और उसमें से सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन को अलग रखा जाना भेदभावपूर्ण नहीं है और न ही संविधान के प्रावधानों के खिलाफ है।

ईडब्ल्यूएस के विरोध में निम्न तर्क जजों द्वारा दिए गए :

- चीफ जस्टिस यू.यू. ललित और जस्टिस रविंद्र भट्ट ने मत दिया कि 'आरक्षण से एससी. एसटी. और ओबीसी को बाहर रखना समानता के सिद्धांत का उल्लंघन है। साथ ही 50 प्रतिशत के कोटे की लिमिट को पार करना संविधान के मूल ढाँचे के खिलाफ है।'
- इसके विरोध में यह कहा जा रहा है कि संविधान के अनुच्छेद 15 एवं 16 में जो आरक्षण दिया गया है वह सिर्फ जातिगत व शैक्षिक तौर पर पिछड़ों को ही आरक्षण दिया जा सकता है। अतः इसके अंतर्गत आर्थिक आधार को जोड़ना संविधान की भावना के खिलाफ है।
- एस.सी. और एस.टी. एवं अन्य पिछड़े वर्गो (ओबीसी) के ग़रीब लोगों को ईडब्ल्यूएस कोटे से वंचित करना (इस आधार पर कि उन्हें पहले से ही आरक्षण का लाभ मिल रहा है) संविधान के अंतर्गत समानता का उल्लंघन करता है, क्योंकि संविधान किसी भी वर्ग को बाहर करने की इजाजत नहीं देता है और यह मूलभूत ढाँचा के खिलाफ भी है।

इस फैसले के बाद अब विसंगतियॉ निम्न हैः

1. इस फ़ैसले के द्वारा सिर्फ उच्च वर्गों के ग़रीब तबको को ही आरक्षण का लाभ दिया गया है। अगर ईडब्ल्यूएस के दायरे में सभी जाति और धर्मों के ग़रीब लोगों को लाया जाता तो इसे आर्थिक आधार पर आरक्षण की शुरूआत माना जा सकता था।

2. इस फ़ैसले से उच्च जाति और पिछड़ों के सामाजिक विभाजन को क़ानूनी मान्यता मिली है जो संविधान के समानता के मौलिक सिद्धांत के खिलाफ है।
3. देश में हजार रुपए महीने से कम आमदनी वाले लोगों को ग़रीबी रेखा से नीचे माना जाता है। इनकम टैक्स की छूट के लिए भी 2.50 लाख रुपए सालाना आमदनी का प्रावधान है। लेकिन आठ लाख रुपए की लिमिट के दायरे में लगभग 98 प्रतिशत आबादी आ जाती है। इससे ईडब्ल्यूएस के आर्थिक मापदंड पर क़ानूनी सवाल खड़े हो जाते है।

ईडब्ल्यूएस आरक्षण को वैध ठहराने के लिए संविधान के अनुच्छेद 46 का प्रावधान बताया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि संविधान का यह अनुच्छेद राज्य के नीति-निदेशक तत्वो में शामिल है। इसके अंतर्गत सरकारों को अनेक दिशा-निर्देश दिए गए है। इसके अंतर्गत शराबबंदी, सामान आचार संहिता, पंचायती राज्य जैसे अनेक प्रावधान बनाए गए हैं। लेकिन अनुच्छेद 46 के अंतर्गत अनुसूचित जाति-जनजाति और अन्य पिछड़ों वर्गों के हितों के लिए प्रावधान बनाए की बात कही गई है। इन वर्गों को ईडब्ल्यूएस दायरे से बाहर करने से क़ानून से जाति आधारित आरक्षण की व्यवस्था ओर मज़बूत होगी।

प्रस्तुत मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने अपने समर्थन में निम्न पूर्ववर्ती वादों का सहारा लिया है।

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य एवं अन्य[7] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णीत किया कि लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना संविधान का मुख्य उद्देश्य है। इस वाद में जस्टिस हेगड़े और मुखर्जी ने कहा कि मूल अधिकार एवं राज्य के नीति-निदेशक तत्व हमारे संविधान के अंतःकरण है। मूल अधिकारों का प्रयोजन एक समतावादी (egalitarian) समाज का निर्माण करना और समाज के उत्पीड़न या बन्धनों से सब नागरिकों को मुक्त करना और सबके लिए स्वतंत्रता की उपलब्धि कराना है। निदेशक तत्वो का प्रयोजन कुछ ऐसे सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यो को नियत करना है जो अहिंसात्मक सामाजिक क्रान्ति द्वारा तत्काल प्राप्त किए जा सकते हो।

एम.आर.बालाजी एवं अन्य बनाम मैसूर राज्य एवं अन्य,[8] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि सकारात्मक कार्यवाही (affirmative action) हमेशा उद्देश्य दृष्टिकोण, बाहरी दबावो से मुक्त और सामाजिक और आर्थिक न्याय पर आधारित होनी चाहिए।

आर.चित्रलेखा एव अन्य बनाम मैसूर राज्य एवं अन्य,[9] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने 'पिछड़ेपन' को परिभाषित करते हुए कहा है कि अनुच्छेद 15 (4) सामाजिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से पिछड़ेपन की परिकल्पना करता है न कि केवल सामाजिक या केवल आर्थिक। कोई विशेष वर्ग पिछड़ा वर्ग है या नहीं, इनके निर्धारण के लिए व्यक्ति की जाति ही एकमात्र कसौटी नही हो सकती है। ग़रीबी, पेशा और निवास-स्थान आदि बातों पर भी विचार किया जाना चाहिए।

जानकी प्रसाद पारिमो एवं अन्य बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य एवं अन्य,[10] के वाद में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि भारत में सामाजिक एवं शैक्षणिक पिछड़ापन, आर्थिक पिछड़ेपन

से काफी जुड़ा हुआ है।

केरल राज्य एवं अन्य बनाम एन0एम0 थामस एव अन्य,[11] के वाद में मौलिक समानता के ऊपर असमान को समान अवसर देना पुनः असमानता कारित करता है। और इस प्रकार चयन के मानक में विभेदकारी व्यवहार समानता की अवधारणा के अंतर्गत आता है। इस वाद में चीफ जस्टिस ए.एन.रे ने मत व्यक्त किया कि सरकार के द्वारा सभी वर्गों के बीच सामाजिक, आर्थिक और अन्य असमानता सकारात्मक जिम्मेदारी संवैधानिक क़ानून के लिए महत्त्वपूर्ण है। इस मामले में जस्टिस माहेश्वरी ने जस्टिस वी.आर.कृष्णाअययर, और जस्टिस एस.मुर्तजा फजल अली के आर्ब्जरबेशन को कोट किया जिसमें उन्होंने कहा था कि अनुच्छेद 46 के अंतर्गत अनुसूचित जाति व जनजाति के लिए 'कमजोर वर्गों में' विशेष उल्लेख अर्जित किया गया है। इस संदर्भ में इसका अर्थ प्रत्येक 'पिछड़ा वर्ग' नहीं है, बल्कि आर्थिक रूप से और शैक्षणिक रूप से अनुसूचित जातियों की तुलना में निराशाजनक रूप से दबे-कुचले हुए वर्ग है।

जस्टिस माहेश्वरी ने इस फ़ैसले में जस्टिस रंगनाथ मिश्र द्वारा वाद **मेसर्स शांति स्टार बिल्डर्स बनाम नारायण के.टोटामे एवं अन्य**[12] में दिया था, उद्यरण देते हुए कहा कि, निसन्देह अनुसूचित जाति एव अनुसूचित जन-जाति के अतिरिक्त, लाखो की तादाद में अन्य नागरिक कमजोर वर्गों के अंतर्गत आते है। भारतीय संविधान निर्माताओं की मंशा थी कि अनुच्छेद 46 के अंतर्गत सभी कमजोर वर्गों के लिए लाभान्वित करने का प्रावधान है।

जस्टिस माहेश्वरी ने **इंदिरा साहनी एवं अन्य बनाम भारत सरकार एवं अन्य**,[13] के मामले का भी हवाला दिया जिसमें सभी प्रकार के पिछड़ेपन का हवाला दिया गया था जिसके अंतर्गत आर्थिक पिछड़ापन भी शामिल था, जिसे जस्टिस सावंत ने भारत के बहुसंख्यक लोगों के लिए अभिशाप्त माना था। इसके अंतर्गत मेंस टेस्ट (means test), (अर्थात् आय और सम्पत्ति की मात्रा को सामाजिक उन्नति के रूप में मापदंड माना जा सकता है) को अपनाते हुए इससे क्रीमी लेयर में आने वाले लोगों को आरक्षण से अलग रखा गया था।

जस्टिस बेला एम त्रिवेदी ने आरक्षण पर संविधान निर्माताओं की भावनाओं की याद दिलाई। उन्होंने कहा कि तब क्या सोचा गया था, जो आज 75 सालों के बाद भी हासिल नहीं किया जा सका है। जस्टिस जे.बी. पारदीवाला ने स्पष्ट मत व्यक्त किया कि डॉ. भीमराव अंबेडकर का विचार महज 10 साल के आरक्षण लागू करके सामाजिक सौहार्द लाने का था, लेकिन यह पिछले सात दशकों तक जारी है। आरक्षण अनंतकाल तक जारी नहीं रहना चाहिए और अगर ऐसा होता है तो वह निजी स्वार्थ है।

भारतीय संविधान, आरक्षण और न्यायपालिका

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 15 (1) जो धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग तथा जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध करता है अर्थात् उक्त आधार पर भारत में रहने वाले किसी भी नागरिक के विरूद्ध असमानता का व्यवहार करने से रोकता है। लेकिन अनुच्छेद 15 (4)

सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष उपबन्ध जिसे आरक्षण की संज्ञा दी गई है, का प्रावधान करता है। अर्थात् अनुच्छेद 15 (4), अनुच्छेद 15 (1) का अपवाद है।

'पिछड़े हुए नागरिकों का वर्ग' इस पद की संविधान में कोई परिभाषा नहीं दी गई है। जाति, उपजीविका, निर्धनता और सामाजिक पिछड़ापन का निकट का संबंध है। भारत के संदर्भ में निचली जातियों को पिछड़ा माना जाता है। जाति अपने आप ही पिछड़ा वर्ग हो सकती है।[14]

उल्लेखनीय है कि यह मूल संविधान में नहीं था, इसे प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 द्वारा जोड़ा गया था। यह संशोधन **मद्रास राज्य बनाम चम्पाकम दोराईराजन**,[15] के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के परिणामस्वरूप जोड़ा गया था। उक्त वाद में उच्चतम न्यायालय ने मद्रास राज्य के उस सांप्रदायिक शासकीय आदेश को अवैध घोषित कर दिया था जो चिकित्सा तथा इंजीनियरिग महाविद्यालयों में प्रवेश के निमित्त साम्प्रदायिक आधार पर आरक्षण की व्यवस्था करता था। इसी वाद के निर्णय के प्रभाव को दरकिनार करने के लिए ही उक्त संशोधन अधिनियम को पारित किया गया। **गुलशन प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य**,[16] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णीत किया कि अनुच्छेद 15 (4) केवल राज्य को सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए उपबंध करने हेतु सक्षम बनाता है न कि राज्य पर कोई विशेष कार्यों को करने का दायित्व डालता है अर्थात् वे चाहे तो उक्त वर्गों के उत्थान के लिए कार्य करे या न करे। अर्थात् यह राज्य की विवेकीय शक्ति है। पिछड़ेपन निर्धारित करने की शक्ति राज्य को है, फिर भी राज्य का निर्णय अन्तिम नहीं है। न्यायालय को निर्धारित मानदंड़ों को जाँचने की पूर्ण शक्ति प्राप्त है। **एम.आर.बालाजी बनाम मैसूर राज्य,**[17] के वाद में निर्णीत किया गया कि अनुच्छेद 15(4) का उद्देश्य केवल यह है कि समाज के हितों की उन्नति के साथ ही साथ दुर्बल वर्ग के समुदाय की भी उन्नति हो और वे देश की मुख्य धारा में जुड़ सके। **के.सी.बसन्थ कुमार बनाम कर्नाटक राज्य,**[18] के वाद में आरक्षण संबंधित सभी पहलुओं पर उच्चतम न्यायालय ने विस्तार से चर्चा की। इस वाद में आरक्षण को लेकर न्यायाधीशों के अलग-अलग विचार थे। न्यायमूर्ति श्री चंद्रचूड़ और अन्य न्यायाधीशों ने साधन एवं जाति/समुदाय का मापदंड निर्धारित करते हुए आरक्षण नीति के सामयिक पुनर्विलोकन की संस्तुति की है। इन लोगों ने इस बात पर जोर दिया है कि 'अन्य पिछड़े वर्गों' का पिछड़ापन अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के पिछड़ेपन के समान होना चाहिए। न्यायमूर्ति श्री सेन ने इस संबंध में ग़रीबी के आधार पर जातियों और समुदाय को 'पिछड़े वर्गों' में रखने का समर्थन करते है परंतु वह यह नहीं बता पाए कि कितनी आय के लोगों को ग़रीब मानना चाहिए। न्यायमूर्ति श्री वेंकटारमैया और श्री रेड्डी 'अन्य पिछड़े वर्गों' में सूचीबद्ध जातियों और समुदायो में से केवल उन्हीं को 'अन्य पिछड़े वर्ग' मानने की बात करते है, जो पूर्णतः आय रहित है। न्यायमूर्ति श्री देसाई पिछड़ेपन के निर्धारण हेतु 'आर्थिक आधार' के मापदंड की बात करते है किंतु वह भी यह नही बता सके कि शुद्ध आर्थिक आधार पर किस प्रकार सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन का निर्धारण किया जाएगा। इस वाद में महत्त्वपूर्ण बात यह कही गई थी कि अगर

सरकार प्राथमिकता के आधार पर संरक्षण देने के लिए जाति को ही सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन का आधार बनाती है, तो इसका बड़ा ख़तरा यह है कि सिर्फ इस वजह से जाति व्यवस्था मान्य हो जाएगी और मज़बूत हो जाएगी।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप टंडन,[19] के वाद में यू.पी.सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों, पहाड़ी क्षेत्रों और उत्तराखंड के अभ्यार्थियों को प्रदेश के मेडिकल कॉलेजों में आरक्षण का प्रावधान किया। सरकार की ओर से दलील दी कि ये लोग सामााजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े है। अतः इनके लिए आरक्षण अनिवार्य है। उच्चतम न्यायालय ने ग्रामीण क्षेत्रों के अभ्यर्थियो के आरक्षण को असंवैधानिक घोषित कर दिया क्योंकि राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों की 80 प्रतिशत जनसंख्या एक सजातीय वर्ग नही हो सकता है। वे एक प्रकार के लोग नहीं है, उनके पेशे, सामाजिक, आर्थिक आधार, जीवन-स्तर अलग-अलग है। मात्र गाँवों में रहने से कोई एक वर्ग नहीं हो जाता है। लेकिन पहाड़ी और उत्तरखंड के अभ्यर्थियों के आरक्षण को वैध माना और कहा कि इन क्षेत्रों के नागरिक सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े है क्योंकि इन इलाकों में स्कूलों की काफी कमी है। **प्रधानाचार्य गुंटूर मेडिकल कॉलेज बनाम मोहन राव**,[20] के वाद जिसमें अनुसूचित जाति के माता-पिता से उत्पन्न व्यक्ति, जो इसाई बन गए थे, पुनः अपनी जाति अर्थात् अनुसूचित जाति में लौट आए थे और अनुच्छेद 15 के अंतर्गत आरक्षण का दावा किया। उच्चतम न्यायालय ने निर्णीत किया कि वह आरक्षण का हकदार है। इस बात का विनिश्चय करना उस जाति के सदस्यों का काम है कि वे उस जाति के अंतर्गत उस व्यक्ति को स्वीकार करते है या नहीं।

वलसम्मा पाल बनाम कोचीन विश्वविद्यालय,[21] के वाद में अभिनिर्धारित किया कि एक उच्च जाति की महिला यदि पिछड़ी जाति के पुरुष से विवाह कर लेती है तो उसे अनुच्छेद 15 (4) और अनुच्छेद 16 (4) के अधीन आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा क्योंकि ऐसी महिला की परवरिश सामान्य जाति के सदस्य के रूप में अच्छे से हुई है। ऐसे लोग जो विवाह, गोद लेने या झूठे प्रमाण-पत्र प्राप्त कर अनुसूचित जाति या पिछड़े वर्ग के सदस्य बन जाते है, वे उक्त दोनो अनुच्छेदों के अंतर्गत आरक्षण की सुविधा के हकदार नहीं होंगे। केवल वही व्यक्ति आरक्षण के हकदार होगे जो उन्हीं आभावों, परेशानियों और प्रताड़नाओं से गुजरे हो जिनसे उक्त वर्ग के सदस्य गुजरें हैं।

इंदिरा साहनी बनाम भारत सरकार,[22] (मंडल निर्णय) के वाद में आरक्षण पर नौ जजों की बेंच ने महत्त्वपूर्ण निर्णय देते हुए कहा गया कि अन्य पिछड़े वर्गों के लिए किया गया आरक्षण वैध है। यह भी कहा गया कि यह आरक्षण सिर्फ प्रारंभिक नियुक्तियों पर ही लागू होगा न कि पदोन्नति के मामलों पर। उच्चतम न्यायालय ने इस वाद में जाति आधारित आरक्षण की अधिकतम सीमा 50 प्रतिशत तय कर दी। इस वाद में सरकारी नौकरियों में दिए जा रहे आरक्षण मुख्य विवाद का मुद्दा था।

उल्लेखनीय है कि महाराष्ट्र सरकार के मराठा आरक्षण के फ़ैसले को उच्चतम न्यायालय ने असंवैधानिक घोषित कर दिया और साथ ही कोर्ट ने यह भी स्पष्ट किया कि ऐतिहासिक

इंदिरा साहनी निर्णय पर पुनर्विचार की ज़रूरत नहीं है।[23] यह निर्णय सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों (एसईबीसी) अधिनियम, 2018 पर आधारित था, जिसके अंतर्गत मराठों को उच्च शिक्षा और सरकारी नौकरियों में आरक्षण प्रदान करना था। इस मामले में पाँच न्यायाधीशों की संवैधानिक बेंच ने इंदिरा साहनी वाद के 50 प्रतिशत की सीमा को अच्छा बताया साथ ही इंदिरा साहनी के निर्णय को परीक्षण करने के लिए लार्जर बेंच में भेजने से भी इंकार कर दिया और कहा कि इंदिरा साहनी में 50 प्रतिशत आरक्षण की सीमा जो तय की गई है, उसके बाद के कई निर्णयों में इसे मान्य घोषित किया जा चुका है और ऐसे में इंदिरा साहनी निर्णय को दोबारा देखने की ज़रूरत नहीं है।

इंदिरा साहनी के वाद में जो 50 प्रतिशत की सीमा तय की गई है इसके पीछे तर्क यह दिया जा रहा है कि समाज में एक उचित संतुलन बना रहे। यदि यह सीमा लाँघ दी जाती है तो समाज समानता पर नहीं बल्कि जाति के शासन पर आधारित हो जाएगा। यह आरक्षण के लिए राजनीतिक दबाव का अनैच्छिक विषय बनकर रह जाएगा। संविधान का लक्ष्य एक जाति विहीन समाज है।

टी.एम.ए.पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य,[24] के वाद में इंदिरा साहनी के निर्णय को अप्रासंगिक माना गया। इसने अल्पसंख्यक संस्थानों में अल्पसंख्यक छात्रों के लिए आरक्षण पर 50 प्रतिशत की सीमा को हटा दी थी। हालाँकि यह संविधान के अनुच्छेद 29 व अनुच्छेद 30 के अंतर्गत पूरी तरह से अलग संदर्भ में था।

यद्यपि आजकल की सामाजिक धारणा यह है कि आरक्षण चाहे ब्राह्मणों का हो, दलितो का हो, पिछड़ों का हो, निर्धनों का हो, महिलाओ का हो, अल्पसख्यको का हो, आरक्षण पाने वाले की प्रतिभा को विकलांग करता है और उसके आत्मविश्वास की हत्या करता है। आरक्षण केवल सभी समुदायों के शारीरिक रूप से विकलांगों का ही होना चाहिए।

उल्लेखनीय है कि ओबीसी कैटिगैरी में भी उच्चतम न्यायालय ने क्रीमी लेयर की सीमा तय कर दी जो कि अब 8 लाख रुपए है अर्थात् हर ओबीसी को आरक्षण का लाभ नहीं दिया जा सकता है उन्हीं को लाभ दिया जाएगा जो ग़रीब हैं अर्थात् आरक्षण का लाभ कुल मिलाकर उसे ही दिया जा रहा है जो ग़रीब है। फिर चाहे वह जनरल कैटेगरी का व्यक्ति हो या फिर अन्य पिछड़े वर्ग का, निर्धारण अंततः ग़रीबी ही है।

आधारभूत ढाँचे का उल्लंघन

उच्चतम न्यायालय के 13 जजों की बेंच ने 1973 में केशवानंद भारती के वाद में कहा था कि संशोधन की शक्ति के इस्तेमाल से संविधान की मूलभूत ढाँचे में बदलाव नहीं किया जा सकता है।

- उक्त फ़ैसले के बाद से संविधान में अब तक 70 से ज्यादा संशोधन हो चुके हैं, जिसमें से सिर्फ 5 को ही उच्चतम न्यायालय ने रद्द किया है। इस संबंध में अंतिम बार 2015

में उच्चतम न्यायालय ने जजों की नियुक्ति करने वाली एनजेएसी क़ानून को रद्द कर दिया था।

- उच्चतम न्यायालय ईडब्ल्यूएस को तभी रद्द कर सकता था जब इससे संविधान के मूलभूत ढाँचे का उल्लंघन होता। इस मामलें में अल्पमत का फ़ैसला देने वाले जस्टिस भट्ट ने कहा कि आर्थिक आधार पर आरक्षण के दायरे में अनुसूचित जाति-जनजाति और अन्य पिछड़ों वर्गों के लोगों को बाहर रखना, समानता का उल्लंघन है। उनके अनुसार ऐसा विभेदकारी क़ानून पहले कभी नहीं बना है।
- ईडब्ल्यूएस के क़ानून को लागू करने के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 और 16 में व्यापक बदलाव किए गए है। डॉ. अंबेडकर ने संविधान के मूल अधिकारों को सबसे बहुमूल्य माना था। केशवानंद भारती के वाद में भी मूल अधिकारों को संविधान के मूलभूत ढाँचे के अंतर्गत माना गया है। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश यू. यू.ललित और जस्टिस भट्ट के अल्पमत के फ़ैसले से साफ है कि ईडब्ल्यूएस के लिए किए गए संविधान संशोधन मूलभूत ढाँचे का उल्लंघन है।
- कागजी तौर पर ईडब्ल्यूएस आरक्षण को जनरल कटैगरी में 10 प्रतिशत का वर्गीकरण बताने की कोशिश की जा रही है। लेकिन व्यवहारिक तौर पर अब 60 प्रतिशत आरक्षण हो गया है।
- आरक्षण से संबधित तमिलनाडु मामले में उच्चतम न्यायालय की दूसरी बेंच 50 प्रतिशत लिमिट के उल्लंघन पर सुनवाई कर रही है। ईडब्ल्यूएस के इस फ़ैसले के बाद अनेक मामलों की सुनवाई प्रभावित हो सकती है।
- संविधान के अनुच्छेद 141 के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय के फ़ैसले 'लॉ ऑफ द लैंड' माने जाते है। इन्हें संसद के क़ानून या फिर ज्यादा जजों के बेंच के द्वारा ही बदला जा सकता है। संवैधानिक प्रावधानों और इंद्रा साहनी फ़ैसले के आधार पर गुजरात उच्च न्यायालय ने 2016 में आर्थिक आधार पर आरक्षण को निरस्त किया था।
- 50 प्रतिशत की लिमिट के उल्लंघन के कारण मराठा आरक्षण क़ानून को उच्चतम न्यायालय ने पिछले साल रद्द कर दिया था। आरक्षण में 50 प्रतिशत की लिमिट को फलेक्सिबल बनाने के लिए भी इंदिरा साहनी से बड़ी बेंच अर्थात् 11 जजो की लार्जर बेंच में सुनवाई होनी चाहिए।

समाज में आने वाली चुनौतियाँ

उल्लेखनीय है कि पिछले आम चुनाव के पहले ईडब्ल्यूएस आरक्षण को जल्दबाजी में संविधान के 103वें संशोधन के माध्यम से लागू किया गया था। आर्थिक आधार पर उच्च समुदाय के लोगों के वर्गीकरण और आरक्षण को सुप्रीम मान्यता मिलने के बाद अब अनेक राज्यों में मनमाने आरक्षण की बाढ़ आने से आर्थिक और क़ानूनी आरजकता बढ़ सकती है।

क्रीमी लेयर की लिमिट

रेवडियो पर बहस के बीच आम चुनावो के पहले केंद्र व राज्य सरकारों में सरकारी नौकरियों में भर्ती की होड़ लगी है। कुछ दलों द्वारा क्रीमी लेयर की लिमिट को 8 लाख से बढ़ाकर 15 लाख की सिफ़ारिश की है। ईडब्ल्यूएस की स्कीम केंद्र सरकार की है लेकिन लाभार्थियो को राज्य सरकारों द्वारा सर्टिफिकेट जारी किए जाएगे। ईडब्ल्यूएस का लाभ अगर असली ज़रूरतमंद ग़रीब लोगों की बजाय अगर फर्जीबाड़े वाले लोगों को मिला तो समाज में वैचेनी के साथ अदालतों में मुकदमेबाजी भी बढ़ेगी।[25]

मंडल आयोग-3 एवं आरक्षण पर राजनीति

ईडब्ल्यूएस आरक्षण के वैधानिक दर्जा प्राप्त कर लेने के पश्चात कई तरह के विवादो को भी जन्म दे दिया है और अब इस विषय पर राजनैतिक दलों द्वारा जमकर राजनीति की जा रही है जो आगे भी जारी रहेगी। दरअसल जब से अगड़े ग़रीबों को ईडब्ल्यूएस आरक्षण दिया गया है तब से ही ओबीसी के अंदर इस मसले पर अलग से विरोध का मौका भी देखने को मिल रहा है क्योंकि ओबीसी समुदाय अपने आरक्षण की सीमा को 27 प्रतिशत से बढ़ाकर लगभग 50 प्रतिशत करने की माँग कर रहा है और अब तो उनके तरफ से तर्क भी आ रहा है कि जिस तरीके से अगड़े के लिए उनका आरक्षण 10 प्रतिशत तय किया गया है, उसी आधार पर अब उनके आरक्षण के कोटे को भी बढ़ाया जाए। उल्लेखनीय है कि इस समय देश में सबसे अधिक आबादी ओबीसी की ही है। ओबीसी के समर्थक अगड़े के आरक्षण के आधार पर अपने कोटे को बढ़ाने के संबध में दबाव बनाना शुरू कर दिया है। इसके लिए जातिगत जनगणना को सार्वजनिक कर उसी के हिसाब से हर जाति को आरक्षण देने की माँग भी करने लगे है। उनका यह भी तर्क है कि चूंकी सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले के बाद 50 प्रतिशत से अधिक आरक्षण देने का रास्ता साफ हो गया है, ऐसे में अब उनकी माँग पूरी करने में कोई बाधा नहीं है। देश में राजनीतिक रूप से ओबीसी सबसे बड़े बोट-बैक माने जाते है। ऐसे में उनकी माँगों को नजरअंदाज करना किसी भी राजनीतिक दल के लिए आसान नहीं होगा।

बिहार में जातिगत जनगणना की माँग को अमली जामा पहनाया जा रहा है। बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, झारखंड जैसे राज्यों ने इसके लिए विधान सभाओं में प्रस्ताव भी पारित कर चुके है। उनका तर्क है कि ओबीसी जनगणना होने के बाद इनके लिए आरक्षण की सीमा को 27 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक करने का रास्ता खुल जाएगा। इतना ही नहीं ओबीसी के अंदर क्रीमीलेयर में बदलाव की माँग भी तेजी से उठ रही है। अभी यह सीमा आठ लाख तक की है जिसे बढ़ाकर 15 लाख तक करने की माँग की जा रही है। वर्तमान सरकार पर ओबीसी कमीशन की बहुप्रतीक्षित रिपोर्ट सामने लाने का दबाव बढ़ेगा। सन् 2017 में वर्तमान सरकार ने ओबीसी जातियों के बीच सब-कैटिगरी बनाने की पहल की थी, जिसके लिए एक कमीशन का गठन किया गया था। कमीशन की रिपोर्ट आने के बाद सब-कैटिगरी में आने

वाली जातियों के आरक्षण को अलग-अलग भागों में बाँटा जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि मंडल कमीशन की सिफ़ारिशें लागू होने के बाद से ओबीसी को सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण मिलता है। सरकार का दावा है कि ओबीसी के अंदर सब-कैटिगरी के गठन से अधिक से अधिक ज़रूरतमंदों को आरक्षण का लाभ मिलेगा। अब विपक्ष का तर्क है कि सरकार कमीशन की रिपोर्ट को सार्वजनिक करे और ओबीसी आरक्षण को नये सिरे से लागू करने की पहल करे जबकि सरकार इस कमीशन की रिपोर्ट को संभावित विवाद को देखते हुए खुद अपने बनाए कमीशन को ठंडे बस्ते में रखने की कोशिश कर रही है।[26]

उपरोक्त से स्पष्ट है कि ईडब्ल्यूएस आरक्षण पर सुप्रीम फ़ैसले के बाद अब ओबीसी आरक्षण को लेकर नए विवाद को जन्म देने का प्रयास प्रारंभ हो चुका है। सरकार के लिए भी अब आसान नहीं होगा कि इसे ठंडे बस्ते में डाला जाए क्योंकि आरक्षण बढ़ाने के संबंध में कोई भी माँग को सरकार इस आधार पर ख़ारिज कर देती थी कि इंद्रा साहनी के वाद के 50 प्रतिशत से अधिक का लीमिट लागू हो जाता था, लेकिन अब सुप्रीम कोर्ट ने अपने फ़ैसले में खुद ही लिमिट बढ़ा दी है ऐसे में सरकार के लिए अब कोई बहाना बनाना आसार नहीं होगा।

अनुच्छेद 15 (4) के अंतर्गत राज्य किन्हीं सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गों या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। उल्लेखनीय बात यह है कि यह अनुच्छेद राज्य को केवल विवेकीय शक्ति प्रदान करता है अर्थात् यदि राज्य उचित समझे तो पिछड़े वर्गों के नागरिकों के लिए विशेष प्रावधान बना सकता है, बशर्तें कि वह विशेष वर्ग सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ हो। यहॉ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि समाज का कौन सा विशेष वर्ग सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है इसको निर्धारण करने की शक्ति भी राज्य को ही है। यह सही है कि ऐसे वर्गों के निर्धारण का मापदंड को निर्धारित करना आसान कार्य नहीं है अर्थात् निर्धारण की क्या कसौटियॉ होगी इसे उचित और विधिमान्य होना आवश्यक है और यदि ऐसा है तो ऐसा निर्धारण अनुच्छेद 15 (4) के अपेक्षाओं के अनुकूल माना जाएगा।

कुछ संवैधानिक विशेषज्ञों के अनुसार इंदिरा साहनी के वाद में प्रतिपादित 50 प्रतिशत की शीलिंग सिर्फ अनुच्छेद 15 (4)[27] और अनुच्छेद 16(4) के मामलों में ही लागू होता है जो कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों पर ही लागू होता है अर्थात् इन समुदाय के आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत से ज्यादा नहीं हो सकती है। अन्य समुदाय या अन्य लोगों के मामलो में इंदिरा साहनी की शीलिंग को कोई असर नहीं पड़ता है भले ही उसकों मिलाकर आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत से ज्यादा हो जाए जैसा कि प्रस्तुत मामले में हुआ है।

निष्कर्ष

अंत में यह कहा जा सकता है कि ग़रीब तबके को ऊपर उठाना, पिछड़े लोगों को समाज की बराबरी में लाना और सभी को रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराना यही आरक्षण की सुविधा

का मूल उद्देश्य है। इस संबंध में उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जातिगत आधार पर आरक्षण अब ज्यादा दिनों तक चलने के आसार नजर नहीं आ रहे हैं। सरकार की भी मंशा रही है कि धीरे-धीरे जातिगत आधार पर आरक्षण को समाप्त किया जाए। एंग्लों इण्डियन के लिए संसद में जो आरक्षण दिया गया था, वह खत्म किया जा चुका है। उच्चतम न्यायालय ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि आरक्षण अनंत काल के लिए नहीं हो सकता है। फिलहाल जो भी आरक्षण दिया जा रहा है उस पर दोबारा विचार करने की ज़रूरत भी बताई गई है, क्योंकि उससे समानता का उद्देश्य पूरा नहीं हो पा रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि ईडब्ल्यूएस कोटा आने के बाद आरक्षण की माँग और जोर पकड़ेगी और यह भी देखना दिलचस्प होगा कि बालाजी और इंदिरा साहनी के वाद में प्रतिपादित 50 प्रतिशत की सीमा को कहाॅ तक लचीला बनाया जाता है।

यह भी विडम्बना है कि जब भारत का संविधान लागू हुआ उस समय भारत की अनुसूचित जातियॅा और जनजातियॅा की जनसंख्या बहुत ग़रीब, वंचित और अल्पशिक्षित थी और आज 2022 में देश की ज्यादातर आबादी ख़ुद को अनुसूचित जाति और जनजाति जैसा साबित करने में जुटी है। मराठा, पाटीदार, जाट, गुर्जर, उत्तर प्रदेश में भी कई जातियॅा इत्यादि ख़ुद को ग़रीब, वंचित और अल्पशिक्षित होने का दावा कर आरक्षण की मॅाग कर रही है। इसका सीधा मतलब तो यही है कि आज़ादी के 75 सालों के बाद भी देश में समृद्धि नहीं ग़रीबी बढ़ी है।

अंत में कहा जा सकता है कि आरक्षण का लाभ सिर्फ उन्हें ही मिलना चाहिए जो वास्तविक रूप से आर्थिक दृष्टि से ग़रीब और पिछड़े हुए है फिर वे किसी भी जाति, धर्म और समुदाय के हो। एक बार यदि आरक्षण का लाभ लेकर कोई परिवार यदि ग़रीबी की रेखा से ऊपर आ गया हो और अब वह पिछड़ा नहीं रह गया है तो तत्काल उस परिवार को आरक्षण के लाभ से वंचित कर दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, समय-समय पर सरकारों को आरक्षण पा रही सभी जातियों का ब्यौरा ऑनलाईन कर उनका पिछड़ापन और आर्थिक आधार को जाँचते रहना चाहिए जिससे कि ऐसे लोग आरक्षण का दुरूपयोग न कर सके।

❑

संदर्भ

1. डॉ. अनिरूद्ध प्रसाद, आरक्षण, अनारक्षण और उसके बाद, (1989) 4 विधिका 356
2. मुरलीधर चतुर्वेदी, भारत का संविधान, 15वाँ संस्करण, 2014 पृ. 125
3. ए.आई.आर. 1993 एस.सी. 477
4. एम.आर.बालाजी बनाम मैसूर राज्य, ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 649
5. ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 490
6. निर्णय दिनांक 7 नवंबर, 2022 रिट पिटिशन (सिविल) न. 55/2019
7. ए.आई.आर. 1973 एस.सी.

8. ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 6494
9. ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1822, एम.आर.बालाजी एवं अन्य बनाम मैसूर राज्य एवं अन्य, ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 6494
10. ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 930
11. ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 490
12. ए.आई.आर. 1990 एस.सी. 630
13. ए.आई.आर. 1993 एस.सी. 477
14. दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान : एक परिचय, 1999, 18वाँ संस्करण, पृ. 94
15. ए.आई.आर. 1952 एस.सी. 226
16. ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 288
17. ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 649
18. (1985) सप्लिमेंटरी, एस.सी.सी. 714
19. ए.आई.आर. 1975 एस.सी. 563
20. ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 1904
21. (1996) 3 एस.सी.सी. 545
22. ए.आई.आर. 1993 एस.सी. 477
23. जयश्री लक्ष्मनराव पाटिल बनाम चीफ मिनिस्टर और अन्य, निर्णय 09 सितंबर, 2020
24. निर्णय अक्टूबर 31, 2002
25. विराग गुप्ता, ईडब्ल्यूएस का रिजर्वेशन, कौन से उठे सवाल, नवभारत टाइम्स (हिंदी डेली न्यूज पेपर), नवंबर 9, 2022 पृ. 10
26. नरेंद्र नाथ, ईडब्ल्यूएस आरक्षण में ओबीसी को क्या दिखा, (हिंदी डेली न्यूज पेपर), नवंबर 11, 2022 पृ. 8

डॉ. मनीषा यादव

युवा वर्ग और नशा

हमारा भारत अपनी संस्कृति, सभ्यता व संस्कारों के लिए विश्व प्रसिद्ध है। जितने संस्कार एक भारतीय में होते हैं। उतने शायद विश्व के किसी भी कोने में नहीं है। जैसा हम सभी जानते हैं कि मानव एक परिवर्तनषील प्राणी है। वह समय के अनुसार कुछ परिवर्तन लाता है। लेकिन वर्तमान समय में पविर्तन इस कदर से हो गया है कि आज का युवा सभ्यतारूपी जंजीरों को तोड़ चुका है।

भारत एक ऐसा देष है जिसमें सबसे ज्यादा युवा निवास करते हैं। युवा देश का भविष्य माना जाता है। किसी भी देश की तरक्की 'युवा वर्ग' के माध्यम से होती है किंतु आज का युवा वर्ग एक गंभीर समस्या नशाखोरी में डूबा हुआ है। आज युवाओं के हालत इस प्रकार है।

'नशा एक अभिशाप' है सबको ये समझाए,
देश का भविष्य है। युवा, जीवन इनका बचाइए।

नशाखोरी एक ऐसा सामाजिक अभिशाप है जो कि गाँवों से लेकर शहरों व महानगरों तक अपने पैर पसार रहा है यह एक ऐसी बुराई है जिसने राजा को रंक बना दिया है। आज का युवा अनेक तरह की समस्याओं को छुटकारा पाने के लिए या उन्हें भूलने के लिए मादक पदार्थों का सेवन करता है। वह बिल्कुल उसी तरह है जिस प्रकार जब एक बिल्ली कबूतर को एक शिकार बनाने चलती है और कबूतर आँख बंद करके सोता है कि ख़तरा टल गया और अपनी जान गवाँ देता है। ठीक उसी प्रकार आज युवा वर्ग नियमित मादक पदार्थो का सेवन कर उसका आदी बन गया है और धीरे-धीरे अपना मानसिक और शारीरिक संतुलन खो रहा है।

नशाखोरी की चपेट में आने वाला युवा वर्ग इस तरह जाल में फँसता चला जा रहा है कि उसकी सोचने समझने की क्षमता नष्ट होती जा रही है वह मादक पदार्थो जैसे शराब, चरस, गाँजा, स्मोक, हीरोइन, कोफिन, कोका पत्ती, ताड़ी, अफीम इत्यादि को खरीदने के लिए अन्य बुराईयाँ चोरी, डकैती, बैंक लूटने को जन्म देता है।

''नशा जो करता है इंसान है बन जाता है वह हैवान,
न रहती उसकी इज्जत, न रहता धर्म इमान।

वर्तमान समय में सर्वप्रथम यह सोचना ज़रूरी है कि आखिर क्या कारण है कि जिस कारण युवा वर्ग इसकी चपेट में आ रहे हैं। आखिर क्यों?

हमें तम्बाकू मुक्त दिवस इत्यादि मनाने की आवश्यकता पड़ रही है इसका प्रमुख कारण मेरे विचार से लगता है कि उनमें आधुनिकता बनने की होड़ मची है। जिस प्रकार विदेशों में

लोग शराब खुलेआम पीते हैं वह ख़ुद को भी उसी सभ्यता से मिलाना चाहता है। उसका प्रमुख कारण सिनेमा और विदेशी चैनल व अश्लील चैनल का प्रभाव है। क्योंकि जैसा मानव देखता है वैसा बन जाता है। तीसरा कारण बेरोज़गारी और असुरक्षा की भावना, भविष्य की चिंता के कारण भी वह इस जहर को निगल रहा है। चौथा कारण पारिवारिक माहौल जो हर व्यक्ति के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अंतिम कारण सबसे महत्त्वपूर्ण संगती है। जो उसको बिगाड़ भी सकती है और सुधार भी सकती है।

''आधुनिकता की होड़ने कर दिया सर्वनाश,
बेरोज़गारी क्या कहे, यह बनी अति विशाल,
क्या संगती वह होड़ है जिसने किया तुम्हें बरबाद।

❑

लघुकथा

मनमोहन कालरा

गर्भपात

आशुतोष सिन्हा का परिवार सुखी परिवार था। उनकी तीन बेटियाँ थीं। सबका लालन-पालन ठीक ढंग से हो रहा था। कुछ वर्षों के बाद सिन्हा के माता-पिता रिटायर हो गए और उनके साथ रहने लग गए। बस यहीं से समस्याएँ शुरू हो गई थीं। सासुजी अक्सर बहू को ताना मारा करती थी, कि तू यहाँ लड़कियाँ पैदा करने के लिए आई है। तू आजीवन लड़का पैदा नहीं कर सकी, अब हमारी मुक्ति कैसे होगी? हमारे पित्तरों का तर्पण कौन करेगा? संयोग से श्रीमती सिन्हा एक बार फिर से गर्भवती हो गई। सास को पूरा विश्वास था कि वह इस बार भी बेटी जनेगी। इसलिए काम में उसे सास ने कोई रियायत नहीं दी। हल्के-भारी सारे काम उसे ही करने पड़ते। इसलिए वह तो चाहती ही नहीं थी कि वह इस दुनिया में आए। जन्म से पहले ही, उसे विदा कर देना चाहती थी।

एक दिन गैस ख़त्म हो गई। श्रीमती सिन्हा से सास ने कहा कि वह गैस सिलिंडर उठाकर लगा दे और समय पर खाना बना दे। वज़न उठाने से उनकी तबीयत ख़राब हो गई। वह दर्द से कराहने लगी और उन्हें रक्तस्राव शुरू हो गया। मिस्टर सिन्हा को फ़ोन किया। वह समय पर आ गए और पत्नी को अस्पताल ले गए। अस्पताल में उन्हें भर्ती कर दिया। डॉक्टर ने दवाइयाँ और इंजेक्शन वगैरह लगाए। स्थिति थोड़ी संभल गई। डॉक्टर ने हिदायत दी अब डिलीवरी होने तक इन्हें पूरा बेड रेस्ट पर रहना होगा और यहाँ अस्पताल में डॉक्टरों की निगरानी में कम-से-कम दो सप्ताह तक रहना होगा। कुछ दिनों बाद सासुजी ने कहा कि अस्पताल में ही लेटे रहना है, तो यह काम घर में भी हो सकता है। सासुजी की ज़िद के आगे किसी की न चली और बहू को अस्पताल से छुट्टी दिलाकर घर ले आए। पर ख़तरा अभी टला नहीं था। सास ने बहू पर घर के काम का बोझ डालना शुरू कर दिया। बहू को हिदायत दी कि इतनी नाजुक न बनो। बहू के पूर्ण विश्राम न करने और कामों के बोझ से उन्हें गर्भपात हो गया। पाँचवा महीना ख़त्म होकर छठा शुरू हो गया था। डॉक्टर ने मिस्टर सिन्हा को कहा 'आपको मैंने समझाया था कि उसे घर मत ले जाइए। घर में वह आराम नहीं मिलता जो यहाँ पर है। अभी केस काफी जटिल हो गया है। सात महीने अगर हो जाते, तो सीजेरियन से बच्चे को सुरक्षित जन्म दिया जा सकता था। मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ रहा है कि आपने अपना बेटा अपनी लापरवाही से खो दिया है और तीन बहनों ने अपना भाई। मिस्टर सिन्हा जड़वत रह गए।

❑

डॉ. चंद्र प्रकाश

अस्पृश्यता क़ानून : वर्तमान दशा एवं भावी दिशा

सार : सदियों से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अस्पृश्यता एक कुरीति के रूप में अपना अस्तित्व बनाए हुए है, जिसमें सवर्ण जन अपने से निम्न जाति के लोगों से एक निश्चित दूरी बनाए रखती हैं तथा उन्हें स्पर्श नहीं करती और न ही उनके हाथ से बना भोजन ग्रहण करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में उन्हें सामान्यतः अपने घरों में प्रवेश नहीं करने देते हैं तथा स्पृश्यों के सामाजिक सरोकार एवं धार्मिक कार्यों में अस्पृश्यों की सहभागिता नहीं रहती है। स्वतंत्रता के पश्चात संवैधानिक प्रावधानों द्वारा निश्चित रूप से इस कुप्रथा पर सैद्धांतिक कमी आई है, परंतु व्यवहारिक स्थिति इसके विपरित नजर आती है। संविधानिक रूप से संविधान के अनुच्छेद-17 द्वारा अस्पृश्यता का अंत किया जा चुका है, परंतु अनुसूचित जाति के लोगों के शोषण, अत्याचार, हत्या, बलात्कार, घरों के जला देने संबंधित अनेकों खबरें अखबारों, पत्रिकाओं एवं दैनिक समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं। समाज में समानता, बंधुत्व स्थापित करने एवं दलितों से संबंधित अत्याचारों के रोकथान के लिए संवैधानिक प्रावधान भी नाकाफी साबित हो रहे हैं।

मुख्य शब्द : अस्पृश्यता, क़ानून, संवैधानिक, सामाजिक व्यवस्था, अनुच्छेद।

प्रस्तावना : वैदिक काल से ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था में असमानता एवं ऊंच-नीच किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान रही है। विश्व का कोई भी समाज ऊंच-नीच के संस्तरण से अछूता नहीं है, परंतु भारत में यह असमानता वर्ग के साथ-साथ जाति पर आधारित होने के कारण अधिक कठोर है तथा सामाजिक व्यवस्था में उच्च स्थान (जाति) प्राप्त व्यक्ति, निम्न सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त व्यक्ति के छूने मात्र से अपवित्र हो जाता है। शताब्दियों से भारत में जाति सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख आधार रही है। समाज में उच्च सामाजिक प्रस्थिति (जाति) में जन्म लेने वाले व्यक्ति को सभी तरह के सामाजिक-आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक कार्यों को करने अथवा सहभागिता की स्वतंत्रता है, परंतु निम्न सामाजिक प्रस्थिति (जाति) में जन्मना को अनेक तरह की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक निर्योग्यताओं का सामना करना पड़ता है। निम्न जाति के लोगों के योग्य, कुशल एवं निपूर्णता के पश्चात भी छुआछूत के सामाजिक दंश, भेदभाव एवं अस्पृश्यता को भोगना पड़ता है। भारतीय शास्त्रों में इनके लिए निकृष्ट नामों जैसे-अछूत, अस्पृश्य, अंतजा (जो सबसे बाद में जन्मा हो), दास, दस्यु, अनामिक, अंत्यज, चंडाल, असुर और राक्षस का प्रयोग किया गया है। अंग्रेज़ों के शासनकाल में समाज सुधारकों, समाजशास्त्रियों, नेताओं आदि ने इनके लिए पट्या, हरिजन,

पंचम-वर्ण, दलित वर्ग, बहिष्कृत जाति और अनुसूचित जाति जैसे नवनिर्मित नामों का प्रयोग किया गया। वर्तमान में उक्त सभी को अस्पृश्यों की श्रेणी में रखकर, उनसे सवर्णों द्वारा उचित सामाजिक दूरी बनाए रखी जाती है।

अस्पृश्यता का अर्थ : साधारण शब्दों में अस्पृश्यता का अर्थ ऐसी वस्तुओं से लगाया जाता है जिनको स्पर्श करना वर्जित हो। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में इस शब्द का अर्थ विशेषकर उन लोगों से दूर रहने के लिए किया जाता रहा है, जो निम्न जाति के हैं तथा समाज में निम्न समझे जाने व्यवसायों से संबंधित हैं। ब्रिटिश मानवविज्ञानी जॉन हेनरी हट्टन ने अस्पृश्यता की उत्पत्ति को एक अलग जाति के व्यक्ति द्वारा पकाए गए भोजन को स्वीकार करने पर वर्जित माना। यह निषेध संभवतः स्वच्छता संबंधी चिंताओं के कारण उत्पन्न हुआ और अंततः अन्य पूर्वाग्रहों को जन्म दिया, जैसे कि किसी की जाति से बाहर शादी करने पर वर्जना। सदियों से अस्पृश्यता भारतीय समाज की एक प्रमुख सामाजिक समस्या रही है, जिसके तहत भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उच्च्य स्थान प्राप्त जातियाँ, अपने से निम्न जातियों से सामान्ततः छुआछूत व भेदभावपूर्ण आचरण करती हैं तथा उन्हें अछूत मानकर उनके हाथ का बना भोजन ग्रहण नहीं करती हैं और न ही उन्हें अपने को छूने देती हैं। अस्पृश्यता के संबंध में कहा जाता है कि'अगर कोई एक बार अस्पृश्य के घर में जन्म ले ले, तब वह सब तरह से अस्पृश्य हो जाएगा तथा अस्पृश्यता गुलाम-प्रथा का अप्रत्यक्ष रूप है।'[1] भारत में अस्पृश्यता जाति से संबंधित है और जिसका शिकार मात्र निम्न जाति के लोग ही होते हैं।

ईश्वर की इस धरा पर अनुपम कृति मानव है और मानव इस कारण से मानव है क्योंकि उसके पास संस्कृति है, बिना संस्कृति के मानव पशु समान है। आरम्भिक मनुष्य जंगलों, कन्दराओं अथवा गुफाओं में रहकर घुमंतु जीवन व्यतीत करता था, परंतु अग्नि की खोज के साथ ही उसके जंगली जीवन में परिवर्तन प्रारंभ हुए, और कालांतर में जैसे-जैसे समय बीतता गया इसी क्रम में उसके जीवन में नित नए-नए आयाम जुड़ते गए तथा समाज व संस्कृति के विकास के साथ वह जंगली जीवन से सामाजिक जीवन में उतरोत्तर वृद्धि होती रही। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ अलग-अलग मानवीय समूहों एवं समुदायों का भी प्रादुर्भाव हुआ तथा संस्कृति एवं मानसिक विकास के साथ सत्ता व शक्ति के समावेश ने इन समूहों के बीच प्रजातीय, गुण, रंग आदि के तहत उच्चता एवं निम्नता की भावनापैदा की। ममता रूपी जननी के कोख से जन्म लेना वाला प्रत्येक बच्चा जन्म के समय मात्र एक शिशु होता है और इस धरती पर सभी मानवीय बच्चे का जन्म एकसमान प्रक्रिया के द्वारा होता है, परंतु कब उसके अंदर उच्चता एवं निम्नता आ जाती है, पता ही नहीं चल पाता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति उच्चता एवं निम्नता के दो स्तंभों पर टीकी हुई है। डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारानुसार-'भारतीय समाज का ताना-बाना अभी भी जाति-व्यवस्था पर आधारित है और भारतीय समाज के विभिन्न स्तरों में परिवर्तन का निर्धारण अभी भी जाति के आधार पर होता है। प्रत्येक हिंदू जाति में जन्म लेता है, उसकी वह जाति ही उसके धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक जीवन का निर्धारण करती है। यह स्थिति माँ की गोद से लेकर मृत्यु की गोद तक रहती है'[2]।

संवैधानिक प्रावधान : भारतीय समाज में व्याप्त विषमतावादी वर्णव्यवस्था, जिसके तहत मानव-मानव में भेद किया जाता था, ने बाबासाहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर को झकझोरा और इसी का परिणाम था कि वे अपने संपूर्ण जीवन इसी विषमतावादी वर्ण-व्यवस्था की समाप्ति, दमन, शोषण एवं अन्याय के विरूद्ध अपनी कलम चलाते रहे। भारतीय संविधान में एक विशेष वर्ग के शोषण, दमन, रूढ़िवादिता व निर्योग्यताओं से मुक्ति एवं आम नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए अनुच्छेद 14, 15, 16, 17 एवं 19में प्रावधान किए गए। संविधान राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया का आरंभ था, जिसमें भारत के अतीत, तात्कालिक परिस्थितियों एवं भविष्य के भारतीय समाज की परिकल्पना की गई तथा सभी भारतीयों के लिए एकसमान मौलिक अधिकार एवं कर्त्तव्यों की व्यवस्था की गई। साथ ही सभी भारतीयों के बीच समता एवं बंधुत्व की भावना जागृत करने हेतु भी अनेक उपाय अमल में लाऐ गए। समता का तात्पर्य राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक तीनों समानताओं से है तथा समता का निर्माण तभी हो सकता है जब लोगों के बीच भाईचारा हो। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के तहत अनुच्छेद- 17 में किसी भी तरह की अस्पृश्यता को समाप्त किया गया एवं अनेक क़ानूनों एवं अधिनियामों में ऐसे कृत्य कार्य के लिए क़ानूनी दंड का प्रावधान किया गया है।

संविधान के अनुच्छेद 17 के अनुसार, ''अस्पृश्यता का अंत किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। 'अस्पृश्यता' से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा[3]।'' भारतीय संविधान में अस्पृश्यता को अपराध की श्रेणी में रखा अवश्य गया है, परंतु इसे कहीं पर भी परिभाषित नहीं किया गया है, और न ही यह स्पष्ट किया गया है कि अस्पृश्यता की श्रेणी क्या होगी।'केवल संसद को यह प्राधिकार दिया गया है कि वह विधि द्वारा इस अपराध के लिए दंड विहित करे। और इस शक्ति के प्रयोग में संसद ने **अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955** अधिनियमित किया। इसका पुनः नामकरण होकर अब यह (1976 से) **सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955** हो गया है'[4]। 'इस अधिनियम में 'सिविल अधिकार' से कोई ऐसा अधिकार अभिप्रेत है, जो संविधान के अनुच्छेद 17 द्वारा 'अस्पृश्यता' का अंत कर दिए जाने के कारण किसी व्यक्ति को प्रोद्भूत होता है'[5] अर्थात् कोई भी व्यक्ति,किसी दूसरे व्यक्ति से जाति, वंश, संप्रदाय, रंग, वर्ण अथवा वर्ग, स्थान के आधार पर अस्पृश्यता अथवा भेदभाव नहीं करेगा तथा व्यक्ति के साथ सामाजिक, धार्मिक अथवा आर्थिक आधार पर अस्पृश्यता अथवा निर्योग्यताएँ करना या अधिरोपित करना अस्पृश्यता के अंतर्गत सम्मिलित होगा।

अस्पृश्यता का प्रमुख कारण प्रजातीय विविधता का उत्पन्न होना है, भारत में कुछ प्रजातीय समूह अपने को अन्य प्रजातीय समूह से श्रेष्ठ अथवा भिन्न मानती हैं। यह प्रजातीय भिन्नता रंग, शारीरिक बनावट अथवा संस्कृति के आधार पर हो सकती है तथा इसी कारण एक प्रजातीय समूह की अन्य प्रजातीय समूह के प्रति श्रेष्ठता, घृणा अथवा पवित्रता-अपवित्रता की भावना विकसित हो जाती है। साधारण शब्दों में अस्पृश्यता का अर्थ ऐसी वस्तुओं से लिया जाता है जिनको स्पर्श करना वर्जित हो। भारत में इस शब्द का अर्थ विशेषकर उन जातियों से दूर रहने

के लिए किया जाता रहा है जो निम्न जाति की है और जिनका मुख्य कार्य कूड़ा, मैला उठाना या सफाई करना अथवा ऐसे व्यवसायों या कार्यों से है जिन्हें समाज में निम्न माना जाता है।

सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 : जिसे पहले अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 कहा जाता था, में प्रावधान है कि अस्पृश्यता के प्रचार और आचरण करने एवं इससे उपजी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक निर्योग्यता को लागू करने तथा इनसे संबंधित कृत्यों को करना अपराध है और इस हेतु दंड का निर्धारण किया गया। इस अधिनियम के अनुसार धर्म से संबंधित सार्वजनिक स्थल, पूजा, प्रार्थना, नदी, तालाब, कुआँ तथा जल प्रवाह आदि में प्रत्येक व्यक्ति को भाग लेने का अधिकार है। संपूर्ण भारत में प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी दुकान, होटल, जलपान-गृह, सार्वजनिक मनोरंजन के केंद्र, किसी भी धर्मशाला, सराय, मुसाफिर खाना, किसी भी प्रकार के बर्तनों का उपयोग करने, किसी भी सवारी, आभूषण आदि के प्रयोग की पूर्ण स्वतंत्रता है। यदि कोई व्यक्ति किसी भी सार्वजनिक चिकित्सालय, औषधालय, शिक्षण संस्थान, छात्रावास अथवा साधारण जनता के लिए स्थापित किसी प्रतिष्ठान में प्रवेश करने के प्रति भेदभाव बरतता है, तो उसके लिए इस अधिनियम में दंड का प्रावधान है। इस अधिनियम की धारा-3 में किसी भी प्रकार की धार्मिक निर्योग्यताओं को लागू करने हेतु दंड का प्रावधान किया गया है, जिसके तहत कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी लोक पूजा स्थान में प्रवेश करने से, पूजा-स्थान में पूजा या प्रार्थना या कोई धार्मिक सेवा अथवा किसी नदी, झील, तालाब के किसी घाट पर स्नान करने आदि में अस्पृश्यता के आधार पर निवारित करेगा वह कम-से-कम एक माह और अधिक से अधिक छह माह की अवधि के कारावास से और ऐसे जुर्माने से भी, जो कम से कम एक सौ रुपए और अधिक से अधिक पाँच सौ रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा। **धारा-4** में सामाजिक निर्योग्यताओं को लागू करने पर दंड का प्रावधान किया गया है। जो कोई किसी व्यक्ति के विरूद्ध किसी दुकान, लोक उपाहार-गृह, होटल या लोक मनोरंजन-स्थान में प्रवेश करने से रोकेगा, किन्हीं बर्तनों और अन्य वस्तुओं के उपयोग से रोकेगा अथवा किसी नदी, जलस्रोत, कुएँ, तालाब, हौज, पानी के नल या जल के अन्य स्थान का या किसी स्नान घाट, कब्रिस्तान या श्मशाम, सड़क या रास्ते के उपयोग से रोकेगा अथवा किसी सार्वजनिक सवारी के उपयोग या उसमें प्रवेश से रोकेगा या निर्योग्यता को 'अस्पृश्यता' के आधार पर लागू करेगा वह कम से कम एक माह और अधिक से अधिक छह माह की अवधि के कारावास से और ऐसे जुर्माने से भी, जो कम से कम एक सौ रुपए और अधिक से अधिक पाँच सौ रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा[6]। **धारा-5** में वर्णन है कि जो कोई 'अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति को किसी अपस्ताल, शिक्षा-संस्थान, किसी छात्रवास आदि में प्रवेश पर रोकेगा अथवा रोक लगायेगा वह इस अधिनियम के तहत दंडनीय होगा।

अनुसूचित जाति और जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 : अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों पर अत्याचार का निवारण करने के लिए, ऐसे अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालयों का तथा ऐसे अपराधों से पीड़ित का तथा उससे संबंधित

या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम को भारतीय संसद द्वारा 11 सितंबर, 1989 को लागू किया गया। इस अधिनियम के अध्याय-2 में अत्याचार के अपराधों के लिए दंड का प्रावधान किया गया है तथा धारा-3 में अत्याचार के अपराधों के लिए दंड का प्रावधान किया गया है। इस धारा 3-[1(i-xv) एवं 2(i-vi)][7] में कोई भी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं,- अनुसूचित जाति या जनजाति के किसी सदस्य से इनमें वर्णित प्रावधानों का उलंघन अथवा अत्याचार करता है तो कृत अपराध के लिए दंड का प्रावधान किया गया है। इन धाराओं में प्रावधान किया गया है कि कोई भी व्यक्ति जो अनुसूचित जाति अथवा जनजाति का सदस्य नहीं है और वह अनुसूचित जाति या जनजाति के किसी सदस्य को घृणाजनक पदार्थ खाने या पीने के लिए मजबूर करता है अथवा उसे कपड़े उतारने के लिए विवश करेगा, अथवा उसकी जमीन कब्जाएगा अथवा बंधुआ मजदूरी के लिए विवश करेगा, अथवा मतदान करने से रोकेगा, अथवा अपमान करेगा, अथवा महिला का अनादर या लज्जा भंग करने के आशय से हमला या बल प्रयोग करेगा, प्रयोग में लाए जाने वाले पानी को दूषित या गंदा करेगा, अथवा सार्वजनिक स्थान के उपयोग करने से रोकेगा, अथवा मिथ्या साक्ष्य देगा या गढ़ेगा, अथवा उसकी संपत्ति को नुकसान पहुंचायेगा या प्रयास करेगा तो उसे इस अधिनियम की धाराओं के आधार पर सश्रम कारावास या अर्थ दंड अथवा दोनों से दंडित किया जाएगा।

वर्तमान दशा एवं भावी दिशा : यद्यपि भारतीय संविधान के अनुच्छेद-17 एवं अनेक अधिनियमों और संवैधानिक प्रावधानों द्वारा सैद्धांतिक रूप से अस्पृश्ता का अंत किया जा चुका है, परंतु व्यावहारिक स्थिति इतनी सहज नहीं है। आज भी भारतीय समाज में एक जाति/वर्ग विशेष के प्रति अस्पृश्यता, जातिगत भेदभाव, निर्योग्यताएँ एवं शोषण कायम है, जिनमें से अधिकतर निर्योग्यताओं को धार्मिक रूप से निर्धारित कर सामाजिक रूप से लागू किया गया। भारतीय समाज में अस्पृश्यता जैसे अनेक अमानवीय अपराधों को रोकने के लिए क़ानूनी प्रावधान किए गए हैं, किंतु यह समस्या सामाजिक मूल्यों पर आधारित होने के कारण उच्च जाति के लोग दलितों/अस्पृश्यों को मनुष्य और बराबरी का दर्जा देने के लिए तैयार नहीं हैं। शायद ही कोई ऐसा दिन हो जब दलितों से अत्याचार संबंधित खबर समाचार पत्रों में प्रकाशित न होती हो। एक अध्ययन के मुताबिक भारत में हर घंटे दलितों के खिलाफ लगभग पाँच अपराध होते हैं। जहाँ भारत अपनी आज़ादी की 75वीं वर्षगाँठ मना रहा था वहीं राजस्थान के जालोर जिले में तीसरी कक्षा में पढ़ रहे नौ वर्षीय छात्र को उसके शिक्षक ने मात्र इसलिए पीट दिया, क्योंकि उसने पानी के बर्तन को छू दिया था, जिसकी बाद में मृत्यु भी हो गई।यह मात्र एक घटना नहीं थी, वरन यह मानसिक सोच एवं जहर का परिणाम था कि शिक्षक का कार्य करने वाला व्यक्ति भी इसे नजरअंदाज नहीं कर पाया। संभवतः यह घटना इस कारण भी घटित हो कि व्यक्ति संवैधानिक/क़ानूनी मूल्यों की अपेक्षा सामाजिक मूल्यों को अधिक महत्त्व देता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्रायः व्यक्ति प्रत्येक चीज को अपनी मानसिक सोच एवं प्रचलित धार्मिक धारणा के आधार पर देखता और आचरण करता है तथा इसी आचरण का परिणाम

अस्पृश्यता के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

दैनिक भास्कर में दिनांक 10 अगस्त, 2022 को खबर प्रकाशित हुई कि जालौन (राजस्थान) में रहने वाली दलित महिला को गाँव की ही उच्च जाति की दो महिलाओं ने इसलिए मारपीट की, क्योंकि उसने सरकारी हैंड पंप से स्वयं पानी ले लिया। अखबार के मुताबिक 21 जुलाई को दलित पीड़ित महिला जब हैंड पंप से पानी भर रही थी, उसी समय उच्च प्रस्थिति प्राप्त दो महिलाएँ आकर उक्त पीड़ित महिला को जातिसूचक गालियाँ देने लगी। जब पीड़ित महिला ने उक्त घटना की शिकायत पुलिस में की तो उन्होंने भी कोई कार्यवाही नहीं की। पुलिस द्वारा कोई कार्यवाही नहीं किए जाने से विपक्षियों के हौंसले बुलंद हो गए और शिकायत से नाराज दोनों सवर्ण महिलाओं के पतियों ने रात में पीड़िता के घर में घुसकर पुनः मारपीट की गई। इस घटना में पुलिस अगर पीड़िता की शिकायत पर समय से कार्यवाही अमल में लाती तो उक्त पीड़ित महिला को मारपीट से बचाया जा सकता था। स्पृश्यों द्वारा अस्पृश्यों पर किए जाने अत्याचारों एवं अपराधों में से अधिकांश पर पुलिस कोई कार्यवाही ही नहीं करती है तथा उन्हें एक लावारिश की तरह उनके हाल पर छोड़ दिया जाता है।

उक्त एवं ऐसी ही अनेक घटनाओं से प्रतीत होता है कि हिंदुओं के मन में निम्न जातियों (अस्पृश्यों) के प्रति अटूट घृणा एवं द्वेष भावना रहती है तथा वे इस अस्पृश्यता रूपी परम्परा से लज्जित होने के बजाय उसे हमेशा उचित ठहरानेकी कोशिश करते हैं। यह इसलिए क्योंकि अस्पृश्यता संबंधी घटनाओं और अत्याचारों पर वे अधिकतर मौन ही रहते हैं अथवा उसका उस रूप से विरोध या विभत्सना नहीं करते, जिस रूप में सामान्य हिंदू के साथ घटित होने पर करते हैं।जब कभी आर्थिक या सामाजिक हित की बात होती है तो तब सवर्णों के लिए कुछ भी पवित्र या अपवित्र नहीं होता है तथा ये हित समय एवं परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। इसकी प्रमाणितकता इसी से सिद्ध होती है कि चुनावों के समय में दलित वोटों की प्राप्ति के लिए इनके घरों में भोजन करते हैं परंतु जीतने के बाद कोई इनकी बस्तीयों में देखने तक नहीं आता।

विगत पाँच वर्षों में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों पर होने वाले अत्याचारों का विवरण[8]-

क्र.सं.	**वर्ष**	**अनु. जाति/जनजाति द.सं.)**	**(अत्याचार निरोधक) अधि. 1989 बलात्कार (376 भा.द.सं.)**	**वर्षांत पंजीकृत**	**हत्या(302 भा. पुलिस में कुल अपराधों की संख्या**
1	2017	37194	718	2714	**43203**
2	2018	38315	798	2936	**42793**
3	2019	41793	892	3486	**45935**
4	2020	45995	855	3372	**50291**
5	2021	45610	967	3870	**50900**

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, नई दिल्ली के आकड़ों से संबंधित उक्त सारणी से स्पष्ट

होता है कि अनुसूचित जाति एवं जनजातियों पर होने वाले अत्याचारों की दर में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है। सन् 2017 में जहाँ दलित उत्पीड़न के कुल 43203अपराध पंजीकृत हुए, वहीं सन् 2021 में यह संख्या 50,900 हा गई। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 (हत्या) के तहत संपूर्ण भारत में जहाँ 2017 में 718 दलितों की हत्या के अपराध पुलिस में पंजीकृत हुए, वहीं 2021 में यह संख्या बढ़कर 967 हो गई। अत्याचारों एवं अपराधों में होने वाली यह वृद्धि दर मात्र आँकड़े भर नहीं है, वरन यह मानव अधिकारों के हनन को भी दर्शाता है।

चाइल्ड राइट ऑब्जर्वेटरी एवं मध्य प्रदेश दलित अभियान संघ द्वारा दस जिलों में किए गए हालिया सर्वेक्षण के अनुसार 92 प्रतिशत दलित बच्चे आज भी स्कूल में खुद पानी लेकर नहीं पी सकते, क्योंकि उन्हें स्कूल के हैंड पंप और टंकी को छूने की मनाही है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार द्वारा 15 अगस्त, 1995 से कक्षा आठवीं तक के बच्चों के पोषण हेतु प्रत्येक स्कूल एवं आंगनबाड़ी केंद्रों पर मध्याह्न भोजन कार्यक्रम चलाया जा रहा है, परंतु इस मिड डे मिल में भी आए दिन अस्पृश्यता संबंधी घटनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। कभी सवर्ण बच्चे दलित भोजन माता के हाथ का भोजन करने से मना कर देते हैं तो कभी दलित छात्र-छात्राओं को सवर्ण बच्चों से अलग बैठाकर भोजन परोसा जाता है। मई 2022 में उत्तराखंड राज्य के चम्पावत जनपद के सूखीढ़ाँग इंटर कॉलेज में सवर्ण छात्रों ने दलित भोजनमाता के हाथ का बना मध्याह्न भोजन (मिड-डे-मिल) खाने से मना कर दिया। जब पीड़िता ने उक्त घटना की शिकायत प्रशासन से की तो, प्रशासन और अभिभावकों के बीच समझौते के तहत दलित भोजन माता को ही पद से हटा दिया गया। इस घटना में भीसंवैधानिक प्रावधान एवं क़ानून दलित भोजन माता को न्याय नहीं दिला पाया।अनुसूचित जातियों पर हर रोज़ हत्या, बलात्कार, शोषण, अत्याचार, छुआछूत जैसी अमानवीय घटनाएँ घटित होती हैं, परंतु प्रशासन एवं पुलिस की लापरवाही की वजह से से इन्हें यह सब भोगना पड़ता है।

अस्पृश्यों के मसिहा डॉ. भीमराव अंबेडकर अस्पृश्यता की समाप्ति के सन्दर्भ में लिखते हैं कि ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अस्पृश्यों की दयनीय स्थिति से दुखी हो। यह चिल्लाकर अपना जी हल्का करने फिरते हैं कि 'हमें अस्पृश्यों के लिए कुछ करना चाहिए'। लेकिन इस समस्या को जो लोग हल करना चाहते हैं उनमें से शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो यह कहता हो कि 'हमें स्पृश्य हिंदुओं को बदलने के लिए भी कुछ करना चाहिए'[9]। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो समाज का हर कोई हिंदू निम्न जातियों, दलितों और कमजोर वर्गों के रक्षक व हितैशी के रूप में अपने आपका प्रस्तुत कर रहा है तथा कोई भी स्वयं को अथवा सवर्णों को अपनी सोच सकारात्मक करने की वकालत नहीं करता। समाज में यह धारणा बनी हुई है कि अगर किसी का सुधार होना है तो वह अस्पृश्यों का ही होना है। अगर कुछ किया जाना है तो वह अस्पृश्यों के प्रति किया जाना है और अगर अस्पृश्यों को सुधार दिया जाए, तब अस्पृश्यता की भावना मिट जाएगी।अस्पृश्यता, शोषण, अत्याचार एवं छुआछूत का ही परिणाम है कि अधिकांश दलित आज धर्मान्तरण कर बौद्ध धर्म को अपना रहे हैं। यह धर्मान्तरण उनकी इच्छा को नहीं, उनकी विवशता को दर्शाता है।आज़ादी का अमृत महोत्सव मना रहे भारतीय समाज

में संवैधानिक प्रावधानों एवं क़ानूनों के पश्चात भी, जिस दर से अस्पृश्यता एवं छुआछूत संबंधी अपराधों में वृद्धि हो रही, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आने वाले समय में संभवतः धर्मान्तरण की दर में भी वृद्धि देखने को मिले।

आज के वैश्वीक सामाजिक परिवेश को शुद्ध बनाने, समतावादी समाज की स्थापना एवं राष्ट्रीय एकीकरण हेतु अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु सभी को एकजुट होकर प्रयास करने होंगे। भारत में अस्पृश्यता उन्मूलन संबंधी अनेक क़ानूनों का निर्माण किया गया है परंतु अस्पृश्यता की भावना एवं इससे संबंधित घटनाओं को रोकने हेतु सर्वप्रथम सकारात्मक सोच विकसित करने एवं सामाजिक तथ्यों को वैज्ञानिक एवं शैक्षणिक दृष्टिकोण से विचारने की महतीआवश्यकता है। अस्पृश्यता चाहे किसी के साथ एवं किसी के भी द्वारा की जावे, उसका पुरजोर विरोध और भर्त्सना होनी चाहिए। साथ ही समाज में विद्यमान धार्मिक रूढ़िगत मान्यताओं और विषमताओं को समूल नष्ट कर, अस्पृश्यों के लिए सामाजिक न्याय एवं अधिकारों को सुलभ कराने के लिए प्रयास करने होंगे।

❑

संदर्भ

1. बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड-9, डॉ. अंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली,, 2013 पृ. 35
2. वही, पृ. 35।
3. भारत का संविधान, सिद्धार्थ बुक्स, शाहदरा, दिल्ली-32, 2021, पृ. 30
4. भारत का संविधान-एक परिचय, LexisNexis Butterworths Wadhwa Nagpur, 2009 पृ. 98-99
5. सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955, पृ. 01
6. सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955, पृ. 02
7. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, भारत सरकार मुद्रणालय नई दिल्ली, 1989, पृ. 02।
8. https://ncrb.gov.in/sites/default/files/Crime%20in%20India%202017%20-%20Volume%202_0_1.pdf dt. 21.10.2022
9. बाबा साहब डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड-9, डॉ. अंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली,, 2013 पृ. 35

सन्तोष खन्ना

स्वतंत्रता सेनानियों में सिरमौर : सुभाष चंद्र बोस

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लेने वालों में सिरमौर स्वतंत्रता सेनानी नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने भारत के भीतर लगभग बीस वर्ष तक स्वाधीनता संग्राम की गतिविधियों में भाग लेकर कई प्रकार की अपनी छाप छोड़ ही, परंतु जब अंततः उन्होंने कांग्रेस को छोड़कर देश से बाहर विदेश में स्वाधीनता संग्राम की अलख जगाई, वह देश को आज़ाद कराने का उनका योगदान स्वयं में अद्‌भुत, अद्वितीय और अनुपम रहा। चाहे स्वतंत्र भारत के कर्णधार उनके अवदान को नकार की नियति पर चल रहे थे परंतु सूर्य जब गगन को उद्‌भासित करता है तो उसके वर्चस्व को अधिक देर तक नकारा नहीं जा सकता। आज देश के जन-जन में जो स्थान और श्रद्धा नेताजी सुभाष चंद्र बोस के लिए है वह शायद किसी और अन्य स्वतंत्रता सेनानी के लिए ही हो।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस का जन्म 23 जनवरी, 1897 को उड़िया के शहर कटक में एक हिंदू कायस्थ परिवार में हुआ। उनके पिता जानकीनाथ बोस शहर के प्रसिद्ध वकील थे। उन्होंने कटक की महापालिका में लंबे समय तक कार्य किया और वह बंगाल विधान सभा के सदस्य भी रहे। सुभाष चंद्र बोस की माता प्रभावती देवी कोलकाता के एक कुलीन परिवार से थी। सुभाष चंद्र बोस कटक के प्रोटेस्टेंट स्कूल से प्राइमरी शिक्षा ग्रहण कर 1909 में उन्होंने रेवेनशा कॉलेजिएट स्कूल में दाखिला लिया। 1915 में उन्होंने इंटर मीडिएट की परीक्षा पास कर जब 1916 में दर्शनशास्त्र (ऑनर्स) बी.ए. कर रहे थे तो प्रेसिडेंसी कॉलेज में अध्यापकों और छात्रों में हुए झगड़े के कारण उन्हें एक वर्ष के लिए कॉलेज से निष्कासित कर दिया गया। बाद में उन्होंने 1919 में बीए (ऑनर्स) प्रथम श्रेणी में पास किया और कलकत्ता विश्वविद्यालय में उन्होंने चौथा स्थान प्राप्त किया। वे 1919 में आईसीएस परीक्षा के लिए इंग्लैंड चले गए जहाँ उन्होंने 1920 में इस परीक्षा में वरीयता सूची में चौथा स्थान प्राप्त कर लिया। बाद में जब उन्हें लगा कि उनके जीवन का ध्येय आईसीएस बन कर अंग्रेज़ों की गुलामी करना नहीं तो उन्होंने आईसीएस पद से त्यागपत्र दे दिया और वह भारत लौट आए।

सुभाष चंद्र बोस भारत वापस आने के बाद उस समय के कोलकाता के स्वतंत्रता सेनानी देशबंधु चितरंजन दास के साथ काम करना चाहते थे। रविंद्र नाथ टैगोर की सलाह पर सुभाष चंद्र बोस पहले मुंबई में 20 जुलाई, 1921 को महात्मा गांधी से मिले। महात्मा गांधी ने उन्हें

देशबंधु चितरंजन दास के पास भेज दिया। उन दिनों महात्मा गांधी असहयोग आंदोलन चला रहे थे। सुभाष चंद्र बोस कोलकाता में चितरंजन दास के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन में सहभागी हो गए। किंतु चौरी चौरा कांड के बाद जब गांधी जी ने असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया तो अनेक स्वतंत्रता सेनानी गांधी जी के असहयोग आंदोलन के स्थगन से नाराज हो गये। इसी कारण चितरंजन दास ने भी गांधी जी से स्वयं अलग कर लिया और उन्होंने 1922 में अपनी एक अलग पार्टी स्वराज पार्टी की स्थापना कर ली और इस पार्टी से उन्होंने कोलकाता महापालिका के लिए चुनाव लड़ा और वह कोलकाता के महापौर बन गए। उन्होंने सुभाष चंद्र बोस को महापालिका का मुख्य कार्यकारी अधिकारी बना दिया। सुभाष चंद्र बोस ने कलकत्ता महापालिका में अपने कार्यकाल के दौरान महापालिका का पूरा ढाँचा ही बदल डाला। उन्होंने कोलकाता के सभी रास्तों के अंग्रेज़ी नाम बदलकर सभी भारतीय नाम कर दिए और स्वतंत्रता संग्राम में प्राण न्यौछावर करने वालों के परिवार वालों को वहाँ नौकरी पर रखा जाने लगा। अंग्रेज़ी साम्राज्य के उस काल में सुभाष चंद्र बोस ने अवसर मिलते ही कोलकाता में अंग्रेज़ी नामों के स्थान पर भारतीय नाम रख दिए। इस संबंध में अगर हम स्वतंत्र भारत में देश का शासन चला रहे कर्णधारों को देखें तो उन्होंने गुलामी के इस प्रकार के चिन्हों से मुक्ति पाने का कोई प्रयास नहीं किया। हाँ, जब से नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बने हैं उन्होंने इस संबंध में कई प्रयास किए हैं। यही नहीं, उन्होंने 15 अगस्त, 2022 को लाल किले की प्राचीर से भारत को आगे बढ़ाने के लिए जिन पाँच प्रण का उल्लेख किया, उनमें देश के लोगों को गुलामी के अहसास से मुक्त करने पर जोर दिया।

प्रायः कहा जाता है कि यदि नेता जी सुभाष चंद्र बोस को स्वतंत्र देश की बागडोर संभालने का अवसर मिला होता तो देश की तस्वीर कुछ और ही होती। अगर हम यह याद करें कि उन्होंने कोलकाता की महापालिका का कार्यकारी मुख्य अधिकारी बन कर जैसे उसका ढाँचा बदल कर रख दिया और कलकत्ता के रास्तों का भारतीयकरण कर दिया, उसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि वह कैसा भारत बनाना चाहते थे।

सुभाष चंद्र बोस ने वर्ष 1921 से लेकर 1939 तक कांग्रेस में रहकर देश को स्वतंत्र कराने के लिए सभी प्रकार की गतिविधियों में भाग लिया जिसके कारण इन वर्षों में अंग्रेज़ों ने उन्हें 11 बार जेल की सजा दी। देखा जाए तो महात्मा गांधी को स्वतंत्रता संग्राम के 27 वर्षों में ग्यारह बार जेल भेजा गया और जवाहर लाल नेहरू को 25 वर्ष में नौ बार जेल भेजा गया जबकि नेता जी सुभाष चंद्र बोस को लगभग बीस बर्ष में ही ग्यारह बार जेल भेजा गया, इससे स्वतंत्रता संग्राम में उनकी अति सक्रियता का पता चलता है। पहली बार वह 16 जुलाई, 1921 को जेल गए थे जब उन्हें 6 महीने जेल में रहना पड़ा था। दूसरी बार 1925 में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और बिना मुकदमा चलाए बर्मा की मांडले जेल में भेज दिया गया। जब 5 नवंबर, 1925 को चितरंजन दास जी का निधन हुआ तो यह खबर सुनकर सुभाष चंद्र बोस की तबीयत बहुत बिगड़ गई किंतु उन्हें अंग्रेज़ सरकार ने जेल से रिहा नहीं किया।

बाद में उनकी जब तबीयत ज्यादा खराब हुई तो सरकार ने उन्हें रिहा करने की यह शर्त रखी कि वह इलाज के लिए यूरोप चले जाएँ, किंतु सुभाष चंद्र बोस ने यह शर्त नहीं मानी। बाद में जब उनकी हालत और अधिक बिगड़ने लगी तो ब्रिटिश सरकार कौ उन्हें जेल से रिहा करना पड़ा। रिहाई के बाद वह इलाज के लिए डलहौजी चले गए किंतु उसके कुछ दिनों के बाद उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया।

1930 में भी वह जेल में बंद थे और वहीं से उन्होंने कोलकाता महापालिका के मेयर का चुनाव लड़ा और वह जीत गए तो सरकार को उन्हें रिहा करना पड़ा। 1932 में सुभाष चंद्र बोस को पुनः गिरफ्तार कर अल्मोड़ा जेल भेज दिया गया। जहाँ उनकी तबीयत खराब हुई तो इस बार सुभाष चंद्र बोस डॉक्टर की सलाह पर यूरोप चले गए। अपने यूरोप प्रवास के दौरान उन्होंने वहीं से भारत की स्वतंत्रता के लिए कई प्रकार के प्रयास करने आरम्भ कर दिया ये। इसी दौरान अपनी एक पुस्तक लिखने के संबंध में उनकी मुलाकात एमिली सेंटर से हुई, बाद में जब वे पुनः यूरोप आए तो उन्होंने वर्ष 1942 में एमिली सेंटर से आस्ट्रिया में हिंदू रीति रिवाज से विवाह कर लिया। उनकी जब बेटी पैदा हुई तो सुभाष चंद्र बोस ने उसका नाम अनीता बोस रख दिया। अपने उसी यूरोप निवास के दौरान अपने पिता की बीमारी की खबर पा वह भारत लौट आए।

वर्ष 1928 में सुभाष चंद्र बोस को कांग्रेस अध्यक्ष के लिए चुना गया किंतु महात्मा गांधी के साथ उनके मतभेद हो जाने से जब पुनः अध्यक्ष पद का चुनाव था तो महात्मा गांधी उन्हें अध्यक्ष नहीं बनाना चाहते थे किंतु चुनाव में वह अध्यक्ष का पद जीत गए। फिर स्थितियाँ ऐसी बनी कि उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देना पड़ा और तब उन्होंने अपने द्वारा स्थापित फॉरवर्ड ब्लॉक के अंतर्गत स्वतंत्रता संग्राम के लिए गतिविधियाँ तेज कर दी और जब अगले वर्ष कोलकाता में गुलामी के प्रतीक हारवेट स्तंभ को सुभाष चंद्र बोस की यूथ ब्रिगेड ने मिट्टी में मिला दिया तो अंग्रेज़ सरकार ने फॉरवर्ड ब्लॉक के कई नेताओं के साथ सुभाष चंद्र बोस को भी गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। सुभाष चंद्र बोस ने जेल में अमरण अनशन आरंभ कर दिया तो उनकी तबीयत खराब होने के कारण ब्रिटिश सरकार ने उन्हें जेल से तो रिहा कर दिया किंतु उन्हें उनके घर पर नजरबंद कर दिया गया और बाहर पुलिस का सख्त पहरा लगा दिया गया। इन सबके बावजूद, सुभाष चंद्र बोस ने नजरबंदी के दौरान एक पठान का वेश बनाकर पुलिस को चकमा देकर भारत छोड़ दिया।

तब आरंभ हुआ सुभाष चंद्र बोस का भारत से बाहर विदेशी धरती से स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास जो स्वयं में एकदम अनूठा एवं अद्वितीय है। अफगानिस्तान से होते हुए वे कई प्रकार के वेश बनाकर अंततः जर्मनी पहुँच गए। जर्मन प्रवास के दौरान उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संगठन बनाया और आज़ाद हिंद रेडियो की स्थापना की। वही वे 29 मई, 1942 को जर्मन के सर्वाधिक सर्वोच्च नेता एडोल्फ हिटलर से मिले पर जब उन्होंने महसूस किया कि हिटलर को भारत में विशेष रुचि नहीं तो उन्होंने जर्मनी छोड़ दिया और वहाँ से किसी तरह जापान

पहुँच गए। जापान रहकर उन्होंने आज़ाद हिंद फौज की स्थापना की। सिंगापुर में उन्होंने 21 अक्टूबर, 1943 को स्वाधीन भारत के लिए अंतरिम सरकार की स्थापना की जिसके वे स्वयं ही राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री बन गए। इस अंतरिम सरकार को कुल 9 देशों ने मान्यता दे दी। नेताजी आज़ाद हिंद फौज के प्रधान सेनापति भी बन गए। आज़ाद हिंद फौज ने जापानी सेना के सहयोग से भारत पर आक्रमण कर अंडेमान और निकोबार द्वीप समूह को आज़ाद करा लिया और सुभाष चंद्र बोस ने वहाँ पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया। दोनों सेनाओं ने मिलकर इंफाल और कोहिमा पर आक्रमण कर दिया परंतु अंग्रेज़ों का पलड़ा भारी होने पर आज़ाद हिंद फौज और जापानी सेना को पीछे हटना पड़ा। कहा जाता है कि जापान ने अपनी हार के कारण नेताजी को बचाने के लिए उन्हें बोंबर हवाई जहाज से जापान के बाहर भेज दिया था किंतु यही बोंबर क्रश हो गया जिसमें कथित रूप से नेताजी की 18 अगस्त, 1945 को मृत्यु हो गई। नेताजी की कथित रूप से वर्ष 1945 में मृत्यु हो गई किंतु उनकी मृत्यु का रहस्य अभी तक रहस्य ही बना हुआ है हालांकि उनकी मृत्यु की गुत्थी को सुलझाने के लिए भारत में कई आयोग बनाए गए किंतु उनकी मृत्यु की गुत्थी अनझुलझी ही रह गई है। भारत की जनता को निश्चित रूप से अभी भी पता नहीं चला कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस के साथ वास्तव में हुआ क्या? भारत सरकार की अभिरक्षा में कुछ गोपनीय फाइलें बताई जाती हैं उन्हें अभी तक सार्वजनिक नहीं किया गया। पता नहीं यह फाइलें नेता जी के बारे में स्वयं में क्या राज छिपाए हैं?

नेताजी सुभाष चंद्र बोस भारत के स्वतंत्रता सेनानियों के सिरमोर हैं। उन्होंने भारत में रहकर 20 वर्ष तक स्वतंत्रता संग्राम में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। उनका भारत में रहकर स्वतंत्रता संग्राम में योगदान ना तो जवाहरलाल नेहरू से कम है और ना ही महात्मा गांधी से क्योंकि अगर महात्मा गांधी 11 बार जेल में भेजे गए तो सुभाष चंद्र बोस को भी ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार कर 11 बार जेल भेजा था। जवाहरलाल नेहरू को तो केवल 9 बार जेल भेजा गया था। इन सब स्वतंत्रता सेनानियों से सुभाष चंद्र बोस का स्वतंत्रता संग्राम में सबसे अधिक अवदान है क्योंकि उन्होंने 1940 से लेकर 1945 तक देश से बाहर रहकर देश को आज़ाद कराने का जो योगदान दिया वैसा योगदान किसी और स्वतंत्रता सेनानी के नाम नहीं है। उन्होंने देश के बाहर जाकर आज़ाद हिंद फौज का गठन किया, स्वतंत्रता भारत की अंतरिम सरकार का गठन किया जिसे विश्व के 9 देशों ने मान्यता दे दी थी। साथ ही उन्होंने देश के ब्रिटिश सरकार के अधीन अंडेमान और निकोबार को आज़ाद करवा वहाँ भारतीय ध्वज फहराया। यदि जापान पर अमेरिका ने परमाणु बंब न बरसाते होते तो शायद जपान हारता नहीं और इतिहास कोई और ही करवट लेता।

वैसे भी अपने देश में रहकर अहिंसा आंदोलन अथवा हिंसक आंदोलन चलाना शुगम हो सकता है किंतु विदेश में रहकर देश को आज़ाद कराने के लिए जिस प्रकार की जटिल गतिविधियों को नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने अंजाम दिया वह स्वयं में बहुत कठिन कार्य था

किंतु सुभाष चंद्र बोस ने यह करिश्मा कर दिखाया। उन्होंने देशवासियों को विदेशी धरा से प्रेरणा देने के लिए दो नारे दिए। एक नारा था 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा।' आज़ादी दी नहीं जाती, आज़ादी ली जाती है। दूसरा नारा दिया था 'दिल्ली चलो।'

अब तक तो देश के सभी लोग नेताजी सुभाष चंद्र बोस के स्वतंत्रता संग्राम में अद्‌भुत योगदान से परिचित हो चुके हैं और अब वह यह भी महसूस करते हैं पिछली सरकारों ने उनके अवदान को कोई महत्त्व और मान्यता नहीं दी थी। जैसे कहा जाता है कि स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू थे जबकि वस्तुस्थिति यह है स्वतंत्र भारत के अंतरिम सरकार के पहले प्रधानमंत्री सुभाष चंद्र बोस थे। खैर, देर से ही सही वर्तमान सरकार ने नेताजी सुभाष चंद्र बोस के अवदान को कुछ सीमा तक मान्यता दी है। भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने इंडिया गेट पर नेताजी सुभाष चंद्र बोस की मूर्ति का अनावरण कर दिया है। राजपथ से कर्त्तव्य पथ बनते ही वहाँ पर नेताजी की मूर्ति नई दिल्ली की नई शान बन गई है। ये शान 100 सालों तक मज़बूती से ऐसे ही खड़ी रहने वाली है। यह प्रतिमा अरुण योगीराज ने तैयार की है जो नेताजी की यह विशाल प्रतिमा भारत में सबसे ऊँची हस्तनिर्मित मूर्तियों में से एक है।

❑

ग़ज़ल

नंदल हितैषी

एक छोटी बहर... एक ग़ज़ल

जब तक जीना होगा भैया।
तब तक सीना होगा भैया।।

कचरे में भी चमक रहा है...
कोई नगीना होगा भैया।।

रहमत की है जिधर हवाएँ...
उधर मदीना होगा भैया।।

माटी ने अंकुहां फोड़ा है...
चुवा पसीना होगा भैया ।।

हलक तलक है सुखा नंदल...
आँसू पीना होगा भैया ।।

❑

(नंदल हितैषी को श्रद्धांजलि स्वरूप)

रेनू माथुर

विश्व-विजयी भारत की महिला राष्ट्रपति श्रीमती द्रोपदी मुर्मू

जाति न पूछो साधू की, पूछ लीजिए ज्ञान
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।

अर्थ : यह दोहा प्रसिद्ध एवं पूजनीय उत्कृष्ट कवि, संत कबीरदास जी की दोहावली से लिया गया है जो आज के युग में भी सटीक उतरता है --

किसी भी सज्जन व्यक्ति को देखकर उसकी जाति न पूछकर उसके ज्ञान को समझना चाहिए, उसका विवेक, धैर्य, समझ तथा उसके चरित्र विकास का आंकलन करना चाहिए हो सकता है वो ऊँची जाति के लोगों से कहीं अधिक ही गुणवान हो। पड़ी रहन दो म्यान अर्थात् यदि तलवार की धार तेज और अमूल्य है तो उसे पूछो न कि म्यान को, वो तो उसकी सुरक्षा हेतू स्वयं ही आ जाएगी।

कबीरदास जी यह रचना उनकी तत्कालीन परिस्थितियों को दर्शाती हैं क्योंकि उस समय जात-पात का भेद अपनी चरम सीमा पर था।

विश्व के सबसे बड़े गणतंत्र देश भारत के संविधान में लिखित सभी नागरिकों के अधिकारों की एक-एक धारा ने स्वयं को सार्थक और सटीक उतारकर आज यह साबित कर दिया, जब देश के राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर भारत के आदिवासी-समुदाय से जुड़ी और जन्म लेने वाली, श्रीमती द्रोपदी मुर्मू ने उच्चतम पद की शपथ ली। ये ही नहीं श्रीमती मुर्मू स्वतंत्र-भारत के पहली महिला हैं जो इस पद पर पहुँचीं।

प्रारंभिक-जीवन : तो आइए, इस मेधावी महिला के प्रारंभिक जीवन पर एक नजर डालते हैं जो की निश्चय ही संघर्ष पूर्ण रहा होगा। श्रीमती द्रोपदी मुर्मू का जन्म 20 जून, 1958 को ओडिशा के मयूरभंज जिले, बेदपोसी गाँव में एक संथाल परिवार में हुआ था। उनके पिता बिटंची नारायण टुडू और दादा ने पंचायती-राज के तहत ग्राम-प्रधान के रूप में काम किया था।

श्रीमती द्रोपदी मुर्मू ने अपनी शिक्षा के उपरांत एक अध्यापिका के रूप में अपना व्यवसायिक जीवन आरंभ किया तथा इसके बाद राजनीति में रुचि लेने लगीं। इनका विवाह श्याम चरण मुर्मू से हुआ और दो बेटे एक बेटी इन तीन बच्चों को जन्म दिया। दुर्भाग्य से उनके पति और दोनों बेटों की मृत्यु हो गई। ऐसी असाधारण परिस्थितियों में वे अपना धैर्य खो बैठीं और वे अवसादग्रस्त (डिप्रेशन) हो गईं।

शिक्षा : उनकी प्रारंभिक शिक्षा के.वी, एस अरबेड़ा स्कूल, मयूरभज में हुई। बाद में बी. ए. की डिग्री, रमा देवी महिला विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर से प्राप्त की और उन्होंने एक अध्यापिका के रूप में अपना व्यवसायिक जीवन आरंभ किया तथा उसके बाद राजनीति में रूचि लेने लगीं। वर्ष 1997 में राईरंगपुर नगर पंचायत के पार्षद चुनाव जीतकर अपनी राजनीतिक-यात्रा प्रारंभ की। भाजपा (भारतीय जनता पार्टी) के अनुसूचित मोर्चो के उपाध्यक्ष के रूप में कार्य किया। इसके अतिरिक्त, भाजपा के आदिवासी मोर्चा की राष्ट्रीय कार्यकारणी समिति की सदस्य भी रहीं।

द्रोपदी मुर्मू ओडिशा मयूरभंज जिले की रायरंगपुर सीट से 2000 और 2009 में भाजपा के टिकट पर दो बार जीतीं और विधायक बनीं। ओडिशा में नवीन पटनायक के बीजू जनता-दल और भाजपा गठबंधन की सरकार में द्रोपदी मुर्मू को 2004 और 2009 के बीच मंत्री बनाया गया था।

24 जून, 2022 में श्रीमती द्रोपदी मुर्मू ने राष्ट्रपति पद के लिए अपना नामांकन किया, उनके नामांकन में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और राजनाथ सिंह जी अनुमोदक बने। अपने परिश्रम, लगन, विपरीत परिस्थितियों में भी निरंतर अग्रसर होती रहने वाली स्वतंत्र भारत की बेटी, श्रीमती द्रोपदी मुर्मू भारत के सर्वोच्च राष्ट्रपति के पर आसीन, प्रथम महिला राष्ट्रपति बनकर देशवासियों को ही नहीं बल्कि महिलाओं को भी गर्वित कर रही हैं और हमें हर्ष है कि हम इसके साक्षी बने हैं।

महामहिम श्रीमती द्रोपदी मुर्मू जी ने 25 जुलाई, 2022 को भारत के सर्वोच्च पद पर 15वें राष्ट्रपति-पथ की शपथ ली। ये स्वतंत्र भारत की प्रथम आदिवासी श्रेणी की महिला हैं जो स्वयं के विवेक, उच्च शिक्षा और लगन तथा परिश्रम से इस सर्वोच्च पद तक पहुँचीं। यह प्रत्येक भारतवासी के लिए हमारे संवैधानिक लोकतंत्र को गौरवान्वित करने वाली उपलब्धि है।

उम्मीदें और आशाएँ : एक आदिवासी महिला का कठिन एवं विपरीत परस्थितियों को लक्ष्य और संघर्ष की कहानी को इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा। यह निर्वाचन गणतंत्र के विचार की एक सार्थक अभिव्यक्ति भी है। इस उपलब्धि से एक नई आशा की किरण जगी है कि भारत के प्रत्येक समुदाय के बीच शिक्षा और राजनीतिक चेतना जागेगी तथा सभी वंचित समाज की समस्याओं को सतह पर लाने में सहयोग करेगी।

चुनौतियाँ : राष्ट्रपति पद की गरिमा को बनाए रखने के लिए श्रीमती मुर्मुजी को अनेक चुनौतियों का सामना करने पड़ेगा जैसे अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार और पालन-पोषण के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना होगा। इसके अतरिक्त, महत्त्वपूर्ण चुनौती जनजातीय समाज के समाजिक-आर्थिक उत्थान के साथ-साथ अपनी प्राचीन व्यवस्थाओं की पहचान को भी सुरक्षित रखना होगा। प्रायः राष्ट्रपति के पद का अवलोकन कर इसे केवल एक रबड़ स्टाम्प समझा जाता है, यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि राष्ट्रपति के आधीन रक्षा सेवाओं के तीनों प्रमुख अर्थात् जल, थल और वायु सेनाओं के प्रमुख होते हैं। श्रीमती मुर्मुजी को कठोर संवैधानिक शख्सियत के रूप में जाना जाता है और हम आशा करते हैं कि

वे सबसे बड़े लोकतंत्र को प्रगति के और अग्रसर भी करती रहेंगी।

राष्ट्र के नाम पहला संबोधन

राष्ट्रपति पद पर आसीन होते ही श्रीमती द्रोपदी ने अपने राष्ट्र के नाम संदेश में अपनी राष्ट्रभक्ति और कर्मठता का परिचय दिया। भारत माता को गुलामी से मुक्त कराने वाले स्वतंत्रता-सेनानियों को नमन करते हुए उनके सभी संकल्पों को सन् 2047 तक पूरा करने का संकल्प लिया। सभी भारतीयों को हार्दिक बधाई और आशीर्वाद दिया तथा हर संभव देश को प्रगति की और अग्रसर होने का वचन दिया।

आपने अपने संदेश में कहा -- हर क्षेत्र की अधिकांश महिलाओं को जहाँ लंबे समय तक अपने अधिकारों को पाने के लिए अत्यधिक संघर्ष करना पड़ा वहीं स्वतंत्र भारत के संविधान ने हमारे गणतंत्र दिवस के प्रारंभ से ही सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार को अपनाया। आज़ादी के अमृत-महोत्सव पर टिप्पणी देते हुए भी कहा -- मार्च, 2021 में दांडी यात्रा स्मृति को फिर से जीवंत किया गया है तथा युगांतरी आंदोलन ने हमारे संघर्ष को विश्व-पटल पर स्थापित किया। अतः सम्मान देकर यह महोत्सव के रूप में सदा के लिए जनता को समर्पित है।

कोरोना-काल का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि टीका-करण अभियान के समय हमने विश्व के दूसरे देशों को पीछे छोड़कर दो-सौ करोड़ के आँकड़े को पार किया जो एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। इस समय भारत दुनिया में सबसे तेजी से बढ़ रही एक प्रमुख अर्थव्यवस्थों में से एक है।

ध्यातव्य है कि कि महामहिम श्रीमती द्रोपदी मुर्मू देश की सबसे कम उम्र की राष्ट्रपति हैं। वे अज़ादी के बाद पैदा होने वाली पहली राष्ट्रपति हैं। राष्ट्रपति बनने से पहले उन्होंने वर्ष 2000 से 2004 के बीच ओड़िशा सरकार के मंत्रीमंडल में विभिन्न विभागों में अपनी सेवा दी। उनका राजनीतिक जीवन तो 1997 से ही शुरू हो गया था जब उन्होंने राइरंगपुर नगर पंचायत से पार्षद का चुनाव जीता था। उन्होंने भाजपा के अनुसूचित जनजाति मोर्चे के उपाध्यक्ष के रूप में कार्य किया और वह भाजपा की आदिवासी मोर्चे की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की सदस्य भी रहीं। वे जब झारखंड में राज्यपाल रहीं तो उन्होंने झारखंड विधान सभा द्वारा पारित आदिवासी संबंधी एक विधेयक पर अपने हस्ताक्षर न कर उसे लागू होने से रोक दिया क्योंकि उनको लगा कि वह विधेयक आदिवासी जनता के अधिकारों के विरुद्ध था। अतः कह सकते हैं कि महामहिम एक स्वतंत्रचेता महिला हैं। उनके जीवन में आए अनेक उतार-चढ़ाव भी यह दर्शाते हैं कि वह किसी तरह भी हार न मानने वाली एक संघर्षशील महिला हैं। देश को एक प्रबुद्ध एवं सक्षम राष्ट्रपति की ज़रूरत होती है जो देश की कीर्ति पताका को सर्वदा गगनचुंबी बनाता रहे। महामहिम श्री मुर्मू इसके लिए हर मानदंड को पूरा करती हैं।

❑

डॉ. भगवादनदास

बहादुरशाह जफर पर मुकदमा अंग्रेज़ों का न्यायिक छलावा अथवा न्यायप्रियता

अजीज़ अलदीन मुहम्मद जिसे आलमगीर द्वितीय के नाम से जाना जाता था, जो कि जहाँदरशाह का बेटा, बहादुरशाह का पोता एवं ओरंगजेब का पड़पोता था, सन् 1754 में अहमदशाह बहादुर को हटाकर इमादुल मुल्क़ के सहयोग से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। 1759 में उसके ही ख़ानदानी सहयोगी इमाद अलमुल्क़ के द्वारा षड्यंत्र पूर्वक हत्या करा दिए जाने के बाद शाहजहाँ तृतीय को दिल्ली की गद्दी पर बैठाया गया। उधर आलगमीर के बेटे अलीगोहर जो कि इस हत्या के षड्यंत्र से किसी तरह से बच निकला था, ने अपने को बादशाह घोषित कर दिया तथा दिल्ली का सिंहासन पाने के लिए अंग्रेज़ों से गठजोड़ का प्रयास करने लगा। यही कारण है कि 1764 के बक्सर युद्ध में जबकि मीर कासिम, अवध के नबाब एवं स्वयं मुग़लों की संयुक्त सेना ईस्ट इंडिया कंपनी के विरुद्ध बक्सर के मैदान में लड़ रही थी, उसी समय अलिगोहर दिल्ली का तख़्त हासिल करने में सहयोग हेतु अंग्रेज़ों से वार्ता के अवसर ढूढ रहा था, अंततः वह अंग्रेज़ों के सहयोग से 1765 ई. में शाहजहाँ तृतीय को हटा कर शाहआलम के नाम से दिल्ली के सिहासन पर बैठ गया।

अंग्रेज़ों द्वारा किए गए इस अहसान के बदले शाह आलम ने ईस्ट इंडिया कंपनी के कैप्टन मुनरों के साथ 12 अगस्त, 1765 को इलाहाबाद में एक संधि की। इस संधि के उपबंधों के अनुसार शाह आलम द्वितीय बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा प्रांत के दीवानी अधिकार (अर्थात् बादशाह की ओर से लगान बसूली के अधिकार) ईस्ट इंडिया कंपनी को सौप दिए। बदले में ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा 26 लाख रुपए वार्षिक बादशाह को पेंशन देने पर सहमती हुई। संधि की अन्य व्यवस्थाओं के अनुसार शाह आलम की आंर्थिक सुरक्षा हेतु कोडा एवं इलाहाबाद ज़िला दिया गया। साथ ही, बनारस प्रांत को शाह आलम द्वारा कंपनी को एक निश्चित राजस्व के भुगतान किए जाने तक की स्थिति में फिर से वापिस लौटा दिया गया। बंगाल में दुहरी शासन व्यवस्था लागू की गई। वाहरी प्रबंध ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ रहा तथा आंतिरक प्रबंध हेतु बंगाल नबाब को 53 लाख रुपए वार्षिक दिए जाने का उपबंध किया गया।

उपर्युक्त संधि पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् बादशाह -- शाहआलम द्वितीय नाम मात्रा का बादशाह रहते हुए ईस्ट इंडिया कंपनी का एक तरह से पेंशनर बन गया अर्थात् अब बादशाह

का कोई शाही ख़जाना नहीं रह गया, केवल उतनी ही फ़ौज रख सकता था जितनी फ़ौज का व्यय वह अपनी पेन्शन से बहन कर सके।

29 सितंबर, 1837 को बहादुरशाह ज़फ़र जो कि अकबर द्वितीय के पुत्रा थे दिल्ली के सिंहासन पर अपने सौतेले भाई मिर्ज़ा जहाँगीर को अंग्रेज़ों द्वारा निर्वासित किए जाने के पश्चात् बैठाए गए। बहादुरशाह ज़फ़र स्वभाव से भावुक शायर थे, राजकाज को चलाने के लिए जिन चतुराईयों की आवश्यकता होती है कहा जाता है उनमें वह नहीं थी। 10 मई, 1857 को जो मेरठ में सैनिक विद्रोह हुआ उससे बहादुरशाह ज़फ़र का तख़्त अप्रभावित नहीं रह सका। 11 मई, 1857 को सुबह विद्रोही सैनिक ज़फ़र के लाल क़िले में आ धमके। पूरी दिल्ली में विद्रोही सैनिकों द्वारा की गई हिंसा एवं लूटपाट ने संपूर्ण दिल्ली को भयाक्रांत कर दिया। परिणाम स्वरूप कई अग्रेज़ स्त्री बच्चों यहाँ तक कि कुछ व्यस्कों को भी अपनी प्राण रक्षा में लाल क़िले की शरण लेना पड़ी। इस हिंसा एवं विद्रोह के उन्मादी वातावरण में लाल क़िले के क़िलेपाल कैप्टन डगलस व दिल्ली के रेसीडेंट कमिश्नर मि. फ्रेजर भी मारे गए। विद्रोही सैनिकों ने लाल क़िले में घुसकर बादशाह के दीवाने खास को अपना मुसाफिर ख़ाना बना लिया तथा बादशाह ज़फ़र को हिंदुस्तान का राजा घोषित कर दिया। कुछ दिनों की हिंसा एवं मारकाट के बाद संपूर्ण दिल्ली को अंग्रेज़ विहीन करते हुए विद्रोही सैनिकों ने कब्ज़ा कर लिया।

बादशाह द्वारा भी शाही फरमान जारी किए जाने लगे। मिर्ज़ा मुग़ल के नेतृत्व में शाही सेना का पुर्नगठन किया गया। ईस्ट इंडिया कंपनी की हुकुमत दिल्ली से इतनी जल्दी हार मानने वाली नहीं थी, केवल 4 माह पश्चात् अर्थात् सितंबर, 1857 में करनल नकोल्सन के नेतृत्व में मेरठ एवं अंबाला से आई फ़ौजों ने नजबगढ़ के युद्ध में मुग़ल फ़ौजों को मात दे दी। सितंबर के अंत तक दिल्ली के लाल क़िले पर कब्ज़ा कर दिल्ली पर ईस्ट इंडिया कंपनी की हुकुमत पुनः कायम हो गई।

2. सितंबर 1857 को बहादुर शाह ज़फ़र जिसे हुमायू के मकबरे से केप्टन हडसन द्वारा गिरफ़्तार किया गया था, को बंदी बनाकर उसी लाल क़िले की जेल में लाया गया, जिसमें बहादुर शाह के पूर्वज राजकाज किया करते थे। बंदी बनाने के पश्चात् कंपनी सरकार के समक्ष यह विचारणीय मुद्दा था कि बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र को किस प्रकार से दंडित किया जाए चूँकि उसकी आयु लगभग 82 वर्ष थी, अतः यदि ब्यासी वर्ष के वृद्ध बादशाह जो कि मुसलमानों के साथ-साथ हिंदुओं में भी लोकप्रिय थे, को यदि फाँसी जैसा मृत्युदंड दिया जाता, तो सम्पूर्ण भारत में अंग्रेज़ों के विरुद्ध वातावरण निर्मित हो सकता था। राजनीतिक विद्रोह की गति तेज हो सकती थी। इसी संभावना को भाँपते हुए मेजर विल्सन के आदेश पर कैप्टन हडसन द्वारा उसे हथियार डालने एवं उसकी गिरफ़्तारी के समय, उसकी जान बख़्श देने का आश्वासन् दुहाराया गया था, बशर्ते कि उसके लोग उसे गिरफ़्तारी से आज़ाद करने का प्रयास न करें, अतः ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार द्वारा काफ़ी सोच समझकर यह निर्णय लिया गया कि बादशाह के विरुद्ध अभियोग निर्धारित कर इनकी विधिवत् सार्वजनिक सुनवाई की जाए, ताकि अंग्रेज़ों के प्रति भारतीय जनता के मध्य

न्यायप्रिय होने का सदेंश जाए तथा बादशाह को दंडित भी किया जा सके।

इस संबंध में जाँच कमीशन के अभियोजक मेजर फ्रेडरिक जे. हेरियट द्वारा दिल्ली फील्ड फोर्स के कमांडिंग आफीसर मेजर जनरल सी.बी. पेनी को 05 जनवरी 1857 को जो पत्र लिखा गया उसमें कहा गया था कि ''मुहम्मद बहादुरशाह, दिल्ली के भूतपूर्व सम्राट विद्रोह में सम्मिलित थे अथवा नहीं? ऐसी जाँच को विश्वस्त बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे मुकदमे का रूप दिया जाए अर्थात् बादशाह पर मुकदमे लगाए जाए और उन्हें पैरवी करने के लिए कहा जाए। मेरे विचार से किसी दूसरे उपाय से बादशाह का दोष अथवा उनकी निर्दोशिता सिद्ध नहीं हो सकती, अन्यथा प्रत्येक दूसरे उपाय से किया गया निर्णय अन्याय एवं पक्षपात के अभियोगों से मुक्त न होगा।''

उपर्युक्त चिंतन के तहत् ही ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार द्वारा, करनल एम. डॉस की अध्यक्षता में बहादुरशाह ज़फ़र पर लगे आरोपों की जाँच हेतु सैन्य जाँच कमीशन का गठन किया गया चूँकि कैप्टन हडसन द्वारा बादशाह को मृत्युदंड न दिए जाने का आश्वासन दिया गया था अतः जाँच कमीशन की अधिकारिता के संबंध में दिल्ली के अस्थायी कमिश्नर साण्डर्स द्वारा सर जॉन लारेंस के आदेशानुसार मेजर जनरल सी.वी. पैनी को लिखे गए पत्र द्वारा जाँच कमीशन के अधिकार, जाँच के पूर्व निर्धारित किए गए। इस पत्र में मि. साण्डर्स लिखते हैं कि मैं साथ ही साथ आपको सूचित करता हूँ कि भूतपूर्व बादशाह के जीवन का कप्तान हडसन ने जिम्मा लिया है और यह मेजर जनरल विल्सन के आदेशानुसार किया गया है। अतः फ़ौजी कमीशन को यह अधिकार न होगा कि उन पर कोई दंड नियत करे, अथवा अपनी जाँच के आधार पर अपराध निश्चित करे।

इस प्रकार दिल्ली के भूतपूर्व बादशाह मुहम्मद बादशाह ज़फ़र पर उनके गदर में सम्मलित होने के आरोपों की जाँच हेतु मेजर जनरल एम. जॉस की अध्यक्षता में सैन्य जाँच आयोग गठित किया गया, जिसके लोक अभियोजक फ्रेडरिक जे. हेरियट मेजर डिप्टी जज एडवोकेट जनरल, अनुवादक दिल्ली के डिप्टी कलेक्टर जे.एम. मर्फी (जो अंग्रेज़ी हिंदी फारसी एवं उर्दू के विद्वान थे) एवं अन्य ज्यूरीगण थे। जाँच आयोग ने अपनी पहिली बैठक 27 जनवरी, 1858 को संपन्न की, जिसमें लेफ्टीनेंट करनल डॉस की अध्यक्षता में कमीशन को संगठित करने के सरकारी आदेश पढ़कर पेश किए गए तथा कमीशन में नियुक्त अधिकारियों के नाम अभियुक्त के रूप में बुलाए गए भूतपूर्व बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र को पढ़कर सुनाए गए। इस प्रथम दिन की कार्यवाही में ही अभियुक्त के विरुद्ध चार अभियोग लगाए गए -- प्रथम, तोपखाना रेजीमेंट के सूबेदार मुहम्मद बख़्त खाँ, सहित ईस्ट इंडिया कंपनी के अफ़सरों व सिपाहियों को विद्रोह के लिए भड़काना उनकी सहायता करना। द्वितीय, पश्चिमी प्रदेश के अज्ञात नागरिकों को सरकार के विरुद्ध हथियार उठाने में सहायता देना व उनके साथ मिलकर षड्यंत्र करना। तृतीय अपने को भारत सम्राट घोषित कर सरकार के खिलाफ विद्रोह का झंडा उठाना। चतुर्थ, अंग्रेज़ अफ़सरों तथा अंग्रेज़ी स्त्री एवं बच्चों की हत्या करना।

स्पष्ट है कि फ्रेडरिक हैरियट सैन्य जाँच आयोग के समक्ष इस बात से स्पष्ट रूप से इंकार करते हैं कि रेजीमेंटों की मैगज़ीनों में बंदूक़ की गोलियाँ बनाने में सुअर अथवा गाय की चर्बी का उपयोग होता था। चूँकि इन्हें बनाने वाले ख़लासी हिंदू एवं मुसलमान ही होते थे, अतः यदि ऐसा होता तो वह बनाने से ही इनकार कर देते। दूसरी बात, यदि सुअर की चर्बी का उपयोग थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाए जो भी मुसलिम सैनिकों को उससे इस पर आपत्ति नहीं हो सकती थी। क्योंकि उनके ख़ानदान के लोग जो ख़ानसामा होते थे, वह सुअर के माँस की प्लेटें परोसने, उठाने का काम लंबे समय से कर रहे थे तथा यह कार्य करने में कोई संकोच नहीं करते थे, यदि ऐसा धार्मिक प्रतिबंध होता तो वह कदापि यह काम नहीं करते। हैरियट का मानना था कि बंदूक़ की गोलियों में सुअर, गाय की चर्बी का उपयोग महज एक अफ़वाह थी, जो बदशाह के लोगों ने जान बूझकर कंपनी को वेदखल करने व बादशाह बनने के लिए फैलाई गई थी।

मेजर हैरियट का मानना था कि कारतूस में सुअर एवं गाय की चर्बी से बने होने की समस्या यदि विद्रोह का कारण होती हो, तो ऐसी भयानक विप्लव की परिस्थिति पैदा नहीं होती, निश्चय ही वहाँ ऐसी कोई गुप्त शक्ति थी, जो इस षड्यंत्र का संचालन कर रही थी, जिसने कलकत्ता से पेशावर तक की कंपनी सेनाओं को प्रभावित किया और यह षड्यंत्र किया। जो किसी पूर्व तैयारी अथवा गुप्त संगठन के बगैर संभव नहीं हुआ। कारतूस की अफ़वाह ने तो केवल बारूद में आग लगाने का काम किया था, जिसे पहले से ही जानबूझ कर सुरंग उड़ाने के लिए तैयार रखा गया था।

गवाही के अंत में अभियोजक मेजर फ्रेडरिक हैरियट न्यायाधिकरण के समक्ष पुनः अपना समापन भाषण देते हैं, भाषण की शुरूवात वह इस सर्वविदित आरोप को नकारने से करते हैं कि मेरठ अथवा दिल्ली की रेजीमेंटों में बंदूक़ की गोलियों को बनाने के लिए गाय अथवा चर्बी का उपयोग किया जा रहा था अथवा मुसलमान सैनिकों के मध्य यह कोई बड़ा मुद्दा था। हैरियट के शब्दों में ''मेरठ की तीनों रेजीमेंटो के मैगज़ीनों में एक भी चर्बी वाला कारतूस न था। चाँदमारी करने के लिए कारतूस मैगज़ीनों में बहुत दिनों से बनते चले आए थे, और बनाने वाले उन्हीं के धर्म एवं भावों के व्यक्ति थे, इसलिए यह असंभव था कि मैगज़ीन की कोई बात उनसे छिपी रह सकती और रेजीमेंटों के खलासी जो कारतूस बनाते थे यदि ऐसी कोई बात होती तो वह प्रगट कर देते। अगर यह आपत्तिपूर्ण कारतूस उनकी रेजीमेंटों में ही बनते थे, यदि कोई संदेह की बात होती तो वे लोग तुरंत बनाने से इनकार कर देते।'' आगे फ्रेडरिक हैरियट मुसलमान सैनिकों को सुअर मास के निषेध की बात को भी नकारते हुए कहते हैं कि ''मुसलमानों की कोई जाति ही नहीं है, वह सुअर का गोश्त छू ले तो भी उनके धर्म को बाधा नहीं पहुँच सकती। मध्य भारत के मुसलमान इसका उदाहरण हैं। हम में से ऐसा कौन है जिसने मुसलमान ख़ानसामों को मेज पर से तश्तरियाँ ले जाते न देखा हो, उनमें अवश्य वह चीज़ होती है, जिसका कारतूस में होना बताया जा रहा है, जरा देर के लिए मान भी लें कि कारतूसों में गाय व सुअर की चर्बी थी तो

भी मुसलमानों को उनके काम में लाने से कौन-सी बात बाधक थी? उनके ख़ानदानी जो ख़ानसामागिरी करते हैं, वह मेज़ पर ऐसी तसतरियाँ उठाने में जरा भी संकोच नहीं करते ऐसी दशा में मुसलमान सैनिकों की आपत्ति व्यर्थ थी।

अपनी गहन जाँच में षड्यंत्र के असली कारणों का खुलासा करते हुए फ्रेडरिक हैरियट का मानना था कि केबल 10 मई, नहीं बल्कि इसके बहुत पहले से मुसलमानों में अंग्रेज़ों के प्रति घृणा के भाव विद्यमान थे, उसका सबसे बड़ा कारण था अवध की रियासत की ज़ब्ती। मेजर हैरियट का मानना था कि हिंदुस्तान में मुसलमानों की एक रियासत जब्त हो जाने पर उन लोगों को बड़ी वेदना हुई। हैरियट की इस धारणा की पुष्टि मुक़दमें के गवाह जाटमल की निम्न गवाही से होती है।

अदालत का प्रश्न : अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध मुसलमान एवं हिंदू भावों में अंतर था? जाँच कमीशन के इस प्रश्न के उत्तर में गवाह जाटमल कहता है कि जी हाँ अवश्य था। प्रायः सभी मुसलमान अंग्रेज़ी राज्य को उलट देने के पक्ष में थे, किंतु हिंदुओं के साहूकार एवं बड़े बड़े व्यापरियों को इस पर दुख था। यद्यपि जाटमल अपनी गवाही में आगे यह भी कहते हैं कि हिंदू मुसलमान सैनिकों के मनोभावों में कोई अंतर नहीं था, दोनो के विचार अंग्रेज़ी राज्य के प्रति एक से थे।

हैरियट अपनी जाँच के बारे में आगे कहता है कि ''देशी सेना में अधिकांश हिंदू है'' परंतु हिंदुओं ने कोई अत्याचार नहीं उठा रखे, किंतु सेना के अतिरिक्त विद्रोह का आधार मुसलमानी षड्यंत्र है और यदि पता लगया जाए जो मालूम होगा की उन्होंने सच्चे और झूठे किस्से गढ़-गढ़ के विद्रोह की आग भड़काई जिसके कारण राजभक्त सेना भी विप्लवी हो गई। गदर के लगभग 2 माह पूर्ण से ही सिपाहियों के पास जो पत्र आते थे। वह साधारण संख्या से अधिक थे, पत्रों की यह संख्या इस बात का प्रमाण है कि इन सैनिकों के बीच अवश्य ऐसा प्रभावशाली वातावरण बनाया जा रहा था जो सरकार विरोधी था।

हैरियट अपने वक्तव्य में स्पष्ट करता है कि धार्मिक नेताओं द्वारा निर्मित अंधविश्वास की दीवारें इस विद्रोह का दूसरा कारण है जिन्हें धार्मिक नेता अपने अनुयायियों में सुरक्षित रखते हैं तथा इसके परिणाम स्वरूप धार्मिक रूप से अंधविश्वासी जनता पर फैलाते हैं राजनीतिक क्रांतियों का जन्म होता है, हैरियट कहते हैं कि मेरा इशारा इसी प्रकार कारतूसों की अफ़वाह से है। यही धार्मिक उन्माद विभिन्न धर्मों का व्यक्तियों को एक सूत्र में बँधने एवं किसी विशेष अवसर पर एकमत होने की प्रेरणा देता है, उन्हें एक अवसर भर चाहिए था, और इस घटनाक्रम ने दूसरा अवसर ला दिया। मुसलमान एवं ब्राह्मण सगे भाई की भाँति एक हो गए, सैनिक होने के कारण एक-सी पोशाक, एक-सा भोजन, एक-सा रहन-सहन, एक-सा इनाम और एक ही विचारों में पलते हैं। सरकार के इस एक से व्यवहार ने ही अंत में सरकार की जड़े हिलाने का कार्य किया। फ्रेडरिक हैरियट की राय में चर्बी के कारतूस इतने बढ़े सैनिक विद्रोह का कारण न थे, सिपाहियों में इस विद्रोह की तैयारी पहले से हो रही थी, उन्हें विशेष कर मुसलमानों को पहले से भड़काया जा रहा

था, जिसे मुसलमानी षड्यंत्र का नाम देना उचित होगा। इस षड्यंत्र की मंशा विद्रोह एवं अशांति फैलाकर क्रांति करा देना था। फ्रेडरिक हैरियट यही नहीं रूकता वह अपने मंतव्य को आगे बढ़ाते हुए कहता है कि इन कार्यवहियों के संबंध में दूसरा सबूत यह हैं कि इसमें इस्लामी षड्यंत्र के काग़ज़ात मिले हैं, किंतु कोई भी कागज ऐसा नहीं मिला जिससे यह कहा जा सके कि हिंदू भी षड्यंत्र करके राज्य विप्लव पर उतारू थे अथवा हिंदू पंडितों ने भी ईसाइयों के नाश कर देने की आज्ञा दी हो, उनके पास कोई राजा गद्दी पर बैठाने के लिए नहीं था, तलवार की मद्द से कोई धर्म फैलाने के लिए नहीं था, ऐसी दशा में आटे में हड्डी का मिलाना और चपातियों के बाँटने का षड्यंत्र उनके उपर लगाना अन्याय होगा। इस इस्लामी षड्यंत्र में धैर्य एवं धूर्तता भी पाई जाती है। जब चपातियों का बाँटना जल्दी ही बंद करा दिया गया तो उसके स्थान पर दूसरा खेल खेला गया -- आटे में हड्डियों का मिलाना। षड्यंत्रकारियों ने सोच लिया था कि चपातियों की बात का काफ़ी प्रभाव होगा और आसानी से उसका प्रचार होगा। फिर यह बात फैलाई गई कि 'ग्रांट ट्रंक रोड; की दुकानों पर यही आटा मिलता है और वहाँ से कूच करते समय मजबूरन सिपाहियों को यह आटा ख़रीदना पड़ता था। षड्यंत्रकारियों द्वारा जबर्दस्त यह प्रचार किया गया कि सरकार लोगों को बलपूर्वक ईसाई बनाना चाहती है, तथा उन्हें अपने इस उद्देश्य में आशा से अधिक सफलता मिली।

विद्रोह की तह में मुसलमानी षड्यंत्र था। बादशाह ज़फ़र का पद धर्म के एक अगुआ का है और इस षड्यंत्र में वे एक नेता के रूप में सम्मिलित रहे हैं, प्रेस एवं मुसलमानों ने मिलकर हिंदुओं को भड़काया और विशेषकर सिपाहियों को उत्तेजित किया। नं. 3 लाइट कैबेलरी के सिपाहियों का कारतूस लेने से इनकार करना इसका सबूत है। इन्होंने हिंदुओं को धर्म भय दिखाकर उत्तेजित किया।

सैन्य जाँच आयोग की कार्यवाही 9 मार्च, 1858 तक चली, जिसमें 21 बैठकें हुई, सैन्य जाँच आयोग ने अपनी जाँच के अंतिम दिवस अर्थात् 9 मार्च, 1858 को अभियोजक फ्रेडरिक जे. हैरियट का समापन भाषण सुनने के पश्चात् ज्यूरियों की राय से अभियुक्त बादशाह ज़फ़र को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों का दोषी निरूपित करते हुए लिखा कि ''अदालत उन गवाहियों पर एकमत है कि बादशाह उन अभियोगों के अपराधी है जो कि कहे गए हैं।'' कैप्टन हडसन द्वारा दी गई जीवन की गारंटी का सम्मान करते हुए ब्रिटिश कंपनी सरकार द्वारा बादशाह ज़फ़र को मौत की सज़ा न देकर उन्हें 7 अक्टूबर, 1858 को रंगून के लिए उनकी पत्नी जीनत महल सहित निर्वासित कर दिया गया।

यहाँ चिंतन का मुद्दा यह है कि क्या बहादुरशाह ज़फ़र उन आरोपों के लिए दोषी वास्तव में भी थे जो उनके विरुद्ध लगाए गए थे? इस संबंध में हमें उनके मुख़्तार गुलाम अब्बास द्वारा सैन्य जाँच आयोग के समक्ष दी गई गवाही का उल्लेख करना उचित होगा ---

29 जनवरी, 1858 को मुख़्तार गुलाम अब्बास सैन्य जाँच आयोग के समक्ष गवाही हेतु बुलाए गए अभियोजक द्वारा यह पूछे जाने पर कि 10 मई, 1857 को जब बागी सेना मेरठ

आई तब तुम कहाँ थे? गुलाम अब्बास इसी दीवाने खास में होने की गवाही देते है। अभियोजक द्वारा दूसरा प्रश्न -- कि तुमने उस दिन जो देखा हो, उसको ब्यौरेवार सुनाओं के उत्तर में गुलाब अब्बास देखे गए घटनाक्रम को सिलसिलेवार इस प्रकार ब्यान करते है --

''सवेरे 8 बजे 5-6 सवारों के आने की बात सुनी गई। वे बादशाह की बैठक के बाहर थे, उन्होंने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना शुरू किया, चिल्लाहट सुनकर बादशाह ने अपने गुलामों को भेजा कि पता लगाएँ कि यह शोर कैसा है? एक गुलाम ने सिपाहियों से बातचीत की उसने लौटकर बादशाह से क्या कहा, यह मुझे नहीं मालूम, इसके बाद बादशाह अपनी बैठक से मिले हुए कमरे में आए और मुझे बुलाया। उन्होंने मुझसे कहा कि यह सवार मेरठ में विद्रोह फैलाकर आए हैं और अब चाहते हैं कि धर्म का पक्ष लेकर अंग्रेज़ों से लड़ें और उनका वध करें। इतना कहने के बाद मुझे बादशाह ने तुरंत ही कप्तान डगलस के पास जाने और पूरा विवरण बता देने की आज्ञा दी और कहा कि इस संबंध में साथ ही प्रबंध करने के लिए भी कह देना। मुझसे यह कहने के बाद गुलाम से दरवाज़ा बंद करा लिया। बादशाह की आज्ञानुसार मैं कप्तान डगलस के पास गया एवं समाचार सुनाया। कप्तान डगलस यह सुनते ही मेरे साथ हुए और कहा मामला क्या है? ख़ैर, मैं समझ लूँगा वह दीवाने खास में आए तथा बादशाह से मिलने वहाँ उपस्थित हुए, उस समय बादशाह के शरीर में पर्याप्त बल था और वह स्वयं ही अपनी लकड़ी टेकते हुए बिना किसी के सहारे आ सके थे, फिर उन्होनें कप्तान डगलस से पूछा कि आपको मालूम है कि क्या मामला है? ये फ़ौजी सवार आए हैं और अपनी इच्छानुसार कार्यवाही बहुत जल्द प्रारंभ करना चाहते हैं। कप्तान डगलस ने बादशाह की बातें सुनकर कहा आप बैठक का दरवाज़ा खुलवा दे, जिससे मैं सवारों से आमने-सामने बात कर सकूँ? यद्यपि कैप्टन डगलस के चापदार माखन ने 6 फरवरी, 1858 की अपनी गवाही में कैप्टन डगलस के बादशाह से मिलने अथवा बात करने से इंकार किया था। बादशाह ने कहा परिस्थिति प्रतिकूल है वे लोग भड़के हुए हैं, कहीं आप पर हमला न कर दें, इसलिए मैं दरवाज़ा न खोलने दूँगा। कप्तान ने जिद की, किंतु बादशाह ने उनका हाथ पकड़कर कहा मैं तुम्हे जाने न दूँगा, हकीम एहसान उल्ला खाँ ने दूसरा हाथ पकड़ लिया और कहा अगर आपको बातचीत करना ही है, तो बरामदे से कर लीजिए। आगे के वृतांत के अनुसार कप्तान डगलस ने दीवाने खास व शाही कमरे के बीच वाले कठघरे में जाकर 30-40 सवारों को खड़े देखा, उन्हें बादशाही बेगमों के कमरों के पास खड़े न होने बावत चेताया। डगलस की चेतावनी सुन सवार वहाँ से एक एक करके राजघाट के फ़ाटक से चले गए। आगे अपनी गवाही को जारी रखते हुए गुलाम अब्बास कहते हैं कि बादशाह ने नगर एवं क़िले के दरवाज़े बंद करने के लिए कहा, जिसमें विद्रोही अंदर न आ सके। गुलाम अब्बास अपनी गवाही में आगे कहते हैं कि --

मि. फ्रेजर ने बादशाह से कप्तान साहब के कैंप की रक्षा के लिए दो तोपें तथा कुछ पैदल सैनिक माँगे थे, बादशाह के कमरे में पहुँचकर मैने उन्हें मि. फ्रेजर की प्रार्थना सुना दी, बादशाह ने फौरन ही तमाम सेना को जो उस समय मौजूद थी, मय तमाम अफ़सरों के

जो उपलब्ध हो सके, दो तोपें लेकर कप्तान साहब के निवास स्थान पहुँचने की आज्ञा दी। गुलाम अब्बास ने अपनी गवाही में यह भी बताया था कि उसी समय हकीम एहसान उल्ला खाँ आ गए (जिन्हें कप्तान डगलस ने अपने नौकर से चिट्ठी भेजकर बुलवाया था) और उन्होंने कहा कि मि. डगलस ने दो पालकियाँ भी मँगाई हैं, जिनमें बैठाकर दो लेडियों को जो उनके यहाँ है बादशाही रनवास में छिपाने के लिए भेजा जा सके। बादशाह ने हकीम साहब को इसका प्रबंध करने की आज्ञा दी और निकटवर्ती गुलामों को दो पालकियाँ और उठाने के लिए विश्वास पात्र कहारों को भेजने का हुक्म दिया उन्हें सचेत भी किया कि उन लेडियों को सीधे न ला कर महल के किनारे-किनारे पाईबाग से लावें, जिससे जो विद्रोही क़िले में घुस आए हैं, उनको यह मालूम न होने पाए। बादशाह अंदर खड़े हुए जल्दी प्रबंध करने की ताकीद कर रहे थे। हकीम साहब उनके पास खड़े हुए थे, तभी एक नौकर ने जो पालकियाँ लेने गया था, थोड़ी देर बाद आकर कहा कि पालकियाँ भेज दी गई हैं। लगभग 1 घंटे बाद पालकी वाले लौटकर आए उन्होंने कहा मि. फ्रेजर मार डाले गए। यह सुन हकीम एहसान उल्लाखॉ ने दूसरा आदमी सच्चा विवरण लाने के लिए भेजा, उसने भी लौटकर सूचना दी कि केवल मि. फ्रेजर ही नहीं बल्कि कप्तान डगसल एवं दोनों लेडियाँ भी मार डाली गई हैं।

मुख़्तार गुलाम अब्बास की गवाही के अवलोकन से सतही तौर पर स्पष्ट होता है कि बादशाह ने तो कहीं अपने कर्त्तव्य में चूक की ही नहीं। जैसी ही उन्हें 11 मई के सुबह बागी सैनिकों के आने तथा धर्म के लिए लड़ने के आव्हान की ख़बर मिलती है, वह तुरंत इसकी सूचना क़िलेपाल कप्तान डगलस को भिजवाते हैं तथा कप्तान डगलस को बागियों के बीच जाने से सावधान ही नहीं करते बल्कि हाथ पकड़ कर रोकते भी है। यदि बादशाह कप्तान डगलस को मरवाना चाहते तो वह उन्हें बागी सैनिकों के बीच जाने से क्यों रोकते? क़िले की सुरक्षा डगलस का कर्त्तव्य था, कप्तान डगलस व मि. फ्रेजर द्वारा क्रमशः दो पालकियों व दो तोपों की माँग की जाती है बादशाह उनका प्रबंध करने का तुरंत आदेश ही नहीं देते, बल्कि स्वयं प्रबंध की निगरानी भी करते हैं। यही नहीं कप्तान डगलस के यहाँ रुकी अंग्रेज़ स्त्रियों को बागियों से सुरक्षापूर्वक लाने के उद्देश्य से उन्हें पाईबाग से महल के किनारे-किनारे लाने की ताकीद देते हैं, फिर बादशाह कहा से दोषी हो गए? उनके कर्त्तव्य में कहाँ कमी थी?

यहाँ तस्वीर का दूसरा पहलू भी विचारणीय है कि क़िले की सुरक्षा के लिए भारी भरकम सुरक्षा बंदोबस्त था दो वाल्टियर्स फोर्स की पैदल कंपनियाँ तैनात थी, सशस्त्र द्वारपाल थे, फिर मेरठ से आए बागी सैनिक क़िले में आसानी से कैसे प्रविष्ट हो गए? इन बागी सैनिकों एवं द्वारपालों के बीच गोलीबारी अथवा मारकाट का कोई उल्लेख नहीं मिलता। स्पष्ट है कि बागी सैनिक अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ने हेतु धर्म की दुहाई देते हुए आए थे तथा बादशाही सेना में इस लड़ाई हेतु पूर्व से सहमति थी, तभी तो बिना एक भी गोली चले मेरठ से आए बागी सैनिक आसानी से लाल क़िले में प्रवेश कर जाते है। इस संबंध में हमें गुलाम अब्बास द्वारा दी गई गवाही के कुछ और अंशों का अवलोकन करना होगा।

क्या बादशाह विद्रोह को रोकने में असमर्थ थे?

बादशाह का सेवक मुख़्तार गुलाम अब्बास खाँ अपनी 29 जनवरी की गवाही में सैन्य जाँच आयोग के समक्ष ब्यान करता है कि मि. सीमेन फ्रेजर एवं कप्तान डगलस के मारे जाने का समाचार सुनकर बादशाह अंदर चले गए, किंतु मैं और हकीम साहब दोनों भयभीत एवं दुःखित होकर दीवाने खास में आए इसके कुछ ही क्षण पश्चात् पैदल सिपाहियों के दोनों दल जो क़िले की रक्षा के लिए नियत थे, मेरठ के सिपाहियों के साथ दीवाने ख़ास में आए तथा बंदूक़ और पिस्तौलों से हवाई फायर करने लगे। प्रलय कांड उपिस्थत हो गया बादशाह यह समाचार सुनकर अंदर से निकल आए और दीवाने ख़ास के दरवाज़े पर खड़े होकर अपने नौकरों से कहा कि लोगों को शोर करने से रोको एवं सिपाहियों को सामने आने को कहो।

शोर बंद हो गया तथा सवार अफ़सर घोड़ों पर चढ़े हुए ही बादशाह के सामने आए, बादशाह ने उन लोगों से कहा कि हमने तुम्हें बुलाया नहीं फिर तुम लोग यहाँ आ गए यह कार्य बहुत बुरा है। इस पर लगभग 200 पैदल जो वहाँ मौजूद थे, दीवाने ख़ास में घुस आए और कहा जब तक हुजूर बादशाह की सहायता हम लोगों को नहीं मिलती, तब तक हम लोग मुर्दा से हैं, बादशाह कुर्सी पर बैठ गए और क्रमशः पैदल सवार आ आकर फर्राशी सलाम करके, बादशाह से अपने सिरों पर हाथ रखने की प्रार्थना करने लगे, बादशाह ने ऐसा ही किया।

उपर्युक्त गवाही के कथन से स्पष्ट होता है कि क़िले के अंदर बागी सैनिक ज़ोर जबर्दस्ती नहीं आए थे, बल्कि क़िले की रक्षा में तैनात पैदल सिपाहियों के दोनों दल भी इन विद्रोही सैनिकों के साथ क़िले के अंदर आए थे। इससे स्पष्ट है क़िले की पहरेदारी में तैनात बादशाह के सैनिकों एवं विद्रोही सैनिकों में पूर्व से साठ-गाँठ थी तथा कप्तान डगलस एवं अस्थायी कमिश्नर मि. सीमेन फ्रीजर के मारे जाने की ख़बर से यह लोग इतने उत्साहित हो गए कि वह क़िले के अंदर घुसकर गोलियाँ दाग कर अपनी ख़ुशी का इज़हार कर रहे थे। बागी सैनिक न केवल लाल क़िले के आस पास बल्कि पूरी दिल्ली में फैल गए थे, यमुना पुल पार करते ही जो बागी पैदल व सवार सैनिक दिल्ली व लाल क़िले के आस पास फैलते जा रहे थे तथा एक-एक कर अंग्रेज़ अफ़सरों व अंग्रेज़ लोगों को अपना निशाना बना रहे थे, इन्हें जैसे ही ज्ञात होता था कि किसी हिंदुस्तानी ने चाहे व दुकानदार अथवा नबाव सलीमगढ़ ही क्यों न हों किसी अंग्रेज़ अथवा अंग्रेज़ों को छुपा रखा है, वह उसी के मकान के सामने तोप दागने को लगा देते अथवा बंदूक़ों की गोलियों से उसे छलनी कर देते। इस प्रकार स्पष्ट है कि मेरठ से आए बागी सैनिकों और शाही सेना के मध्य विद्रोह के संबंध में पूर्व से साठ-गाँठ थी तथा इन्होंने एक तरह से बादशाह ज़फ़र को न केवल प्रभावित किया था बल्कि परोक्ष रूप से उन्हें अपने नियंत्रण में ले लिया था। बादशाह ज़फ़र इन बागी सैनिकों को नियंत्रित करने अथवा अपने मुलाज़िमों द्वारा अंजाम दिए जाने बाले कृत्यों को रोकने में विवश थे। शाही ख़ानदान के लोग बागी सैनिकों के साथ इस विप्लव में पूरे जी जान से सामिल थे उनका मानना था

कि अंग्रेज़ी राज हमेशा के लिए दिल्ली से समाप्त हो गया है तथा बादशाही हुकुमत कायम करने का यह उपर्युक्त अवसर है, इसी धारणा के अनुरूप बागी सैनिक शाही सेना बादशाह के मुलाजिम व उनके ख़ानदानी लोग बड़ी-बड़ी कार्यवाहियों को न केवल अंजाम दे रहे थे बल्कि बादशाह को तख़्तेलाज पर विठाकर उनके नाम से देशी नरेशों राजाओं, नबाबों, रहीसों व जागीरदारों को फ़रमान भी जारी किए जा रहे थे। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र ने 1857 के इस सैनिक विद्रोह के समय अपने राजधर्म का-पूरा पूरा पालन किया किंतु उनके शाही ख़ानदान एवं मुलाजिमों ने इसे ब्रिट्रिश राज का अंत समझा।

❑

संदर्भ

1. सैन्य जाँच आयोग के समक्ष दिया गया अभियोजक फ्रेडरिक हैरियट के भाषण का अंश : बहादुरशाह का मुकद्दमा : पृ. 116-117

अंकुर सिंह (कविता)

माँ मुझको जन्म लेने दो

माँ मुझको जन्म लेने दो,
खुली हवा में जीने दो।
भ्रूण हत्या से बचा मुझे,
गर्भ के बाहर आने दो।।

कल्पना बन अंतरिक्ष को जाऊँगी,
प्रतिभा ताई बन देश चलाऊँगी।
मुझे कोख में मत मार माँ,
मैं बापू की पहचान बनाऊँगी।।

भैया संग स्कूल जाऊँगी,
घर के कामों में हाथ बटाऊँगी।
घर के आँगन में चहकने वाली मैं,
दुल्हन लिबास ओढ़े ससुराल जाऊँगी।।

दो परिवारों का सम्मान है बेटी,
मुझको भी अच्छी शिक्षा देना।
जमाना क्या कहता, परवाह नहीं,
मुझे बस तेरे ममता तले है रहना।।

मत मारो मुझको माँ,
दो जीने का अधिकार।
तुम भी तो एक बेटी हो,
जन्म दे मुझे कर उपकार।।

माँ मुझे आज जन्म लेने दो,
अपने सपने को मुझे छू लेने दो।।
चलूँगी तेरे पद चिन्हों पर,
बस! मुझे आज जन्म ले लेने दो।।

❑

अर्चना प्रकाश

व्यक्तित्व की त्रिवेणी अटल जी

श्री अटल बिहारी बाजपेयी जी कवि, लेखक पत्रकार व राजनेता की त्रिवेणी थे। ऐसा अद्‌भुत संयोग किसी अन्य राजनेता के व्यक्तित्व में देखने को नहीं मिलता। वे कहते थे कि मैं संघ का स्वयं सेवक हूँ और जीवन के अंतिम क्षणों तक रहूँगा। अटल जी की जन सभाओं में भारी भीड़ उमड़ती थी जिसमें भाजपा व जनसंघ के अनेक विरोधी भी शामिल रहते थे।

अटल जी ने 1951 में जनसंघ की स्थापना की और 1968 से 1973 तक वे इसके अध्यक्ष भी रहे। वे लगभग चार दशकों तक भारतीय संसद के सदस्य रहे एवं तीन बार प्रधानमंत्री भी बने। अटल जी (रा ज ग) सरकार के पहले ऐसे ग़ैर-कांग्रेसी प्रधानमंत्री थे जिन्होंने प्रधानमंत्री पद के पांच वर्ष बिना किसी समस्या के पूर्ण किए। उन्होंने लंबे समय तक राष्ट्र धर्म पत्रिका पांचजन्य एवं वीर अर्जुन आदि राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत पत्रिकाओं का निर्बाध संपादन किया। 'मेरी इक्यावन कविताएँ', राजनीति की रपटीली राहें, मृत्यु या हत्या, अमर आग हैं, आदि अटल जी की कुछ प्रमुख कृतियाँ हैं।

अटल जी कहते थे कि सोचो और बड़ा सोचो क्योंकि सोच किसी के बाप की जागीर नहीं है। अपने भाषण में वे कहते थे कि छोटे मन से कोई बड़ा नहीं हो सकता और टूटे मन से कोई खड़ा नहीं हो सकता। एक अन्य संदर्भ में उन्होंने कहा ष्मनुष्य को चाहिए कि वह परिस्थितियों से लड़े। एक स्वप्न टूटे तो दूसरा गढ़े। उनके ये वचन आज भी बेहद उपयोगी हैं।

संसद हो या संसद के बाहर, अटल जी अपनी बात हमेशा बेबाक ढंग से रखते थे। उनका शब्दों का चयन ऐसा होता था कि चोटिल या व्यंग्य होने पर भी लोग हंगामा नहीं करते थे। देश की समस्याओं से वे कई बार बेहद चिंतित हुए, लेकिन चिंताओं के विषाद से उन्होंने आस पास का वातावरण कभी बोझिल नहीं होने दिया। चुभते हुए प्रश्नों पर बाजपेई जी ठहाके लगाते थे जो उनके उत्तर न देने की सूझ पूर्ण युक्ति थी। वे कई बार प्रश्नकर्ता से ही पूछते थे कि क्या वास्तव में ऐसा हो रहा है। ये उनके प्रत्युत्पन्न मति होने का सजीव प्रमाण था। इसी के द्वारा वे कठिनतम स्थिति को सहजता से पार कर लेते थे। धैर्य साहस व सहजता के उनमें अद्‌भुत समन्वय था।

लगभग पाँच दशक तक सक्रिय राजनीति करने वाले अटल जी अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे। जिनमें केंद्रीय विदेश मंत्री व प्रधानमंत्री मुख्य पद हैं। सभी पदों पर वे घालमेल से दूर एवमभ्रष्ट राजनीति में भी बेदाग रहे। अटल जी विचारों से निडर व टूटते मूल्यों के समय

भी अडिग रहे। भारत सरकार ने उन्हें भारत रत्न सम्मान से अलंकृत किया, जो उन्हें श्रेष्ठता के शिखर पर स्थापित करता है।

नेहरू गाँधी परिवार के प्रधान मंत्रियों के बाद श्री अटल जी का नाम भारत के उन चुनिंदा नेताओ में शामिल है, जिन्होंने अपने नाम व व्यक्तित्व के करिश्मे से न सिर्फ सरकार बनाई वरन राजनीति में ईमानदारी व निष्ठा की एक सुदृढ सोच को स्थापित किया।

विरोधी पार्टियों के अपने दूसरे साथियों के साथ अटल जी को भी आपात काल में जेल भेजा गया। सन 1977 में उन्हें जनता पार्टी की सरकार में विदेश मंत्री बनाया गया। इस दौरान संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिवेशन में उन्हों ने हिंदी में भाषण दिया। इसे वे अपने जीवन का सुखद क्षण मानते थे। एन डी ए का नेतृत्व करते हुए वे मार्च 1978 से 2004 तक छह वर्ष भारत के प्रधानमंत्री रहे। उनकी सरकार ने 11 मई और 13मई 1998 को पोखरण में लगातार पाँच भूमिगत परमाणु परीक्षण विस्फोट कर के भारत को परमाणु शक्ति सम्पन्न देश घोषित कर दिया। उनके इस कदम से भारत विश्व मानचित्र पर एक सुद्रढ़ वैश्विक शक्ति के रूप में स्थापित हुआ। एक कवि के रूप में उनकी एक रचना जो आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व की है, आज के हिंदुत्व को पूरी तरह समझाने में समर्थ है --

''हिंदू तन मन हिंदू जीवन, रग-रग हिंदू मेरा परिचय।
कोई बतावें कब हमने, काबुल में जाकर मस्जिद तोड़ी।
भू-भाग नहीं शतशत मानव का, हृदय जीतने का निश्चय।''

अटल जी की इस कविता से संघ और भारत की सनातन परंपरा की प्रतिबद्धता का उल्लेख मिलता है। अनेक कवि सम्मेलनों में दूर-दूर से लोग उन्हें सुनने के लिए आते थे। उन्होंने इंदिरा गाँधी की प्रशंसा करते हुए उन्हें दुर्गा का संबोधन प्रदान किया था। पोखरण का जब दूसरा परीक्षण हुआ तो उसकी पहली जानकारी उन्होंने विपक्ष के नेता सोनिया और मनमोहन सिंह को चाय पर बुला कर दी। राजनीति में समाप्त हो रहे शिष्टाचार के काल में उनका ये कार्य दिशाबोधक है।

भारतीय राजनीति के महानायक, भारतीय जनता पार्टी के तिरानबे वर्षीय दिग्गज नेता, प्रखर वक्ता, कवि, लेखक व पत्रकार श्री अटल बिहारी जी इस संसार से विदा हुए तो पूरे राष्ट्र में सन्नाटा फैल गया। ऐसे युग पुरुष को उनकी जयंती पर शत-शत नमन, शत-शत नमन।

❑

संदर्भ

1. राजनीति के शिखर कवि अटल बिहारी बाजपेयी, पृष्ठ 16
2. मेरी इक्यावन कविताएँ पृष्ठ 5 व 112
3. नवभारत टाइम्स 27 मार्च 2014, 4. दैनिक जागरण 17 अगस्त 2018
5. अटल बिहारी बाजपेयी के 34 अनमोल वचन।

प्रो. मुक्ता त्रिपाठी

लैंगिक समानता के लिए उभरती लैंगिक व्यवस्थाएँ और नीतियाँ

नारी प्रीत में राधा बने, गृहस्ती में बने जानकी।
काली बनके शीश काँटे, जब बात हो सम्मान की।।

भारत जहाँ एक ओर आर्थिक-राजनीतिक प्रगति की ओर अग्रसर है वहीं देश में आज भी लैंगिक असमानता की स्थिति गंभीर बनी हुई है। वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक ने वैश्विक स्तर पर भी लैंगिक असमानता को समाप्त करने में सैकड़ों वर्ष लगने की संभावना व्यक्त की है। इन्हीं परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अमेरिका की राजनीतिज्ञ हेलिरी क्लिंटन ने कहा कि 'महिलाएँ संसार में सबसे अप्रयुक्त भंडार हैं।'

किसी समाज की प्रगति का मानक केवल वहाँ का परिमाणात्मक विकास नहीं होना चाहिए। समाज के विकास में प्रतिभाग कर रहे सभी व्यक्तियों के मध्य उस विकास का समावेशन भी होना ज़रूरी है। इसी परिदृश्य में नवीन विकासवादियों ने विकास की नवीन परिभाषा में वित्तीय, सामाजिक और राजनीतिक समावेशन को आत्मसात किया है।

हम 21वीं शताब्दी के भारतीय होने पर गर्व करते हैं जो एक बेटा पैदा होने पर ख़ुशी का जश्न मनाते हैं और यदि एक बेटी का जन्म हो जाए तो शांत हो जाते हैं यहाँ तक कि कोई भी जश्न नहीं मनाने का नियम बनाया गया हैं। लड़के के लिए इतना ज्यादा प्यार कि लड़कों के जन्म की चाह में हम प्राचीन काल से ही लड़कियों को जन्म के समय या जन्म से पहले ही मारते आ रहे हैं, यदि सौभाग्य से वो नहीं मारी जाती तो हम जीवन-भर उनके साथ भेदभाव के अनेक तरीके ढूँढ़ लेते हैं।

लैंगिक असमानता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति प्राचीन या वैदिक काल में सुदृढ़ थी उस समय महिलाओं को सभा और समिति जैसी सामाजिक संस्थाओं में समान प्रतिनिधित्व मिलता था। इसके अतिरिक्त अपाला और लोपामुद्रा जैसी महिलाओं ने वेदों की रचना में भी योगदान दिया। लेकिन परवर्ती काल में महिलाओं की स्थिति लगातार कमजोर होती गई। प्राचीन काल के पश्चात् मध्य काल में महिलाओं की स्थिति लगातार खराब बनी रही। ऐसी परिस्थितियों में आधुनिक

काल के कुछ बुद्धिजीवियों द्वारा भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान लैंगिक समानता हेतु किए गए प्रयास अत्यधिक प्रशंसनीय रहे तथा इन प्रयासों से महिला समानता की नवीन अवधारणा का उद्भव हुआ एवं स्वतंत्रता के पश्चात् निर्मित भारतीय संविधान में भी महिलाओं के सशक्तीकरण से संबंधित विभिन्न प्रावधान किए गए।

लैंगिक असमानता की परिभाषा और संकल्पना

'लिंग' सामाजिक-सांस्कृतिक शब्द हैं, सामाजिक परिभाषा से संबंधित करते हुए समाज में 'पुरुषों' और 'महिलाओं' के कार्यों और व्यवहारों को परिभाषित करता हैं, जबकि, 'लिंग' शब्द 'आदमी' और 'औरत' को परिभाषित करता है जो एक जैविक और शारीरिक घटना है। अपने सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहलुओं में, लिंग पुरुष और महिलाओं के बीच शक्ति के कार्य के संबंध हैं जहाँ पुरुष को महिला से श्रेष्ठ माना जाता हैं। इस तरह, 'लिंग' को मानव निर्मित सिद्धांत समझना चाहिए, जबकि 'लिंग' मानव की प्राकृतिक या जैविक विशेषता हैं। लिंग असमानता को सामान्य शब्दों में इस तरह परिभाषित किया जा सकता है कि लैंगिक आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव। समाज में परंपरागत रूप से महिलाओं को कमजोर जाति-वर्ग के रूप में माना जाता है।

लैंगिक असमानता से तात्पर्य

- लैंगिक असमानता का तात्पर्य लैंगिक आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव से है। परंपरागत रूप से समाज में महिलाओं को कमजोर वर्ग के रूप में देखा जाता रहा है।
- वे घर और समाज दोनों जगहों पर शोषण, अपमान और भेद-भाव से पीड़ित होती हैं। महिलाओं के खिलाफ भेदभाव दुनिया में हर जगह प्रचलित है।
- वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक- 2020 में भारत 153 देशों में 112वें स्थान पर रहा। इससे साफ तौर पर अंदाजा लगाया जा सकता है कि हमारे देश में लैगिंक भेदभाव की जड़ें कितनी मज़बूत और गहरी है।

लैंगिक असमानता के विभिन्न क्षेत्र

- सामाजिक क्षेत्र में -- भारतीय समाज में प्रायः महिलाओं को घरेलू कार्य के ही अनुकूल माना गया है। घर में महिलाओं का मुख्य कार्य भोजन की व्यवस्था करना और बच्चों के लालन-पालन तक ही सीमित है। अक्सर ऐसा देखा गया है कि घर में लिए जाने वाले निर्णयों में भी महिलाओं की कोई भूमिका नहीं रहती है। महिलाओं के मुद्दों से संबंधित विभिन्न सामाजिक संगठनों में भी महिलाओं की न्यूनतम संख्या लैंगिक असमानता के विकराल रूप को व्यक्त करती है।
- आर्थिक क्षेत्र में -- आर्थिक क्षेत्र में कार्यरत महिला और पुरुष के पारिश्रमिक में अंतर है। औद्योगिक क्षेत्र में प्रायः महिलाओं को पुरुषों के सापेक्ष कम वेतन दिया जाता है। इतना ही नहीं रोज़गार के अवसरों में भी पुरुषों को ही प्राथमिकता दी जाती है।

- राजनीतिक क्षेत्र में -- सभी राजनीतिक दल लोकतांत्रिक होते हुए समानता का दावा करते हैं परंतु वे न तो चुनाव में महिलाओं को प्रत्याशी के रूप में टिकट देते हैं और न ही दल के प्रमुख पदों पर उनकी नियुक्ति करते हैं।
- विज्ञान के क्षेत्र में -- जब हम वैज्ञानिक समुदाय पर ध्यान देते हैं तो यह पाते हैं कि प्रगतिशीलता की विचारधारा पर आधारित इस समुदाय में भी स्पष्ट रूप से लैंगिक असमानता विद्यमान है। वैज्ञानिक समुदाय में या तो महिलाओं का प्रवेश ही मुश्किल से होता है या उन्हें कम महत्त्व के प्रोजेक्ट में लगा दिया जाता है। यह विडंबना ही है कि हम मिसाइल मैन के नाम से प्रसिद्ध स्वर्गीय ए. पी.जे अब्दुल कलाम से तो परिचित हैं लेकिन मिसाइल वुमेन ऑफ इंडिया टेसी थॉमस के नाम से परिचित नहीं हैं।
- मनोरंजन क्षेत्र में -- मनोरंजन के क्षेत्र में अभिनेत्रियों को भी इस भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। अक्सर फिल्मों में अभिनेत्रियों को मुख्य किरदार नहीं समझा जाता और उन्हें पारिश्रमिक भी अभिनेताओं की तुलना में कम मिलता है।
- खेल क्षेत्र में -- खेलों में मिलने वाली पुरस्कार राशि पुरुष खिलाड़ियों की बजाय महिला खिलाड़ियों को कम मिलती हैं। चाहे कुश्ती हो या क्रिकेट हर खेल में भेदभाव हो रहा है। इसके साथ ही, पुरुषों के खेलों का प्रसारण भी महिलाओं के खेलों से ज्यादा है।

भारत में लैंगिक असमानता के कारण और प्रकार

भारतीय समाज में लिंग असमानता का मूल कारण इसकी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री सिल्विया वाल्बे के अनुसार, "पितृसत्तात्मकता सामाजिक संरचना की ऐसी प्रक्रिया और व्यवस्था हैं, जिसमें आदमी औरत पर अपना प्रभुत्व जमाता हैं, उसका दमन करता हैं और उसका शोषण करता हैं।" महिलाओं का शोषण भारतीय समाज की सदियों पुरानी सांस्कृतिक घटना है। पितृसत्तात्मकता व्यवस्था ने अपनी वैधता और स्वीकृति हमारे धार्मिक विश्वासों, चाहे वो हिंदू, मुस्लिम या किसी अन्य धर्म से ही क्यों न हों, से प्राप्त की हैं।"

उदाहरण के लिए, प्राचीन भारतीय हिंदू क़ानून के निर्माता मनु के अनुसार, "ऐसा माना जाता हैं कि औरत को अपने बाल्यकाल में पिता के अधीन, शादी के बाद पति के अधीन और अपनी वृद्धावस्था या विधवा होने के बाद अपने पुत्र के अधीन रहना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में उसे खुद को स्वतंत्र रहने की अनुमति नहीं हैं।" मुस्लिमों में भी समान स्थिति हैं और वहाँ भी भेदभाव या परतंत्रता के लिए मंजूरी धार्मिक ग्रंथों और इस्लामी परंपराओं द्वारा प्रदान की जाती है। इसी तरह अन्य धार्मिक मान्याताओं में भी महिलाओं के साथ एक ही प्रकार से या अलग तरीके से भेदभाव हो रहा हैं। महिलाओं के समाज में निचला स्तर होने के कुछ कारणों में से अत्यधिक ग़रीबी और शिक्षा की कमी भी हैं। ग़रीबी और शिक्षा की कमी के कारण बहुत सी महिलाएँ कम वेतन पर घरेलू कार्य करने, संगठित वैश्यावृति का कार्य करने या प्रवासी मजदूरों के रूप में कार्य करने के लिए मजबूर होती हैं लड़की को बचपन से शिक्षित करना अभी भी एक बुरा निवेश माना जाता हैं क्योंकि एक दिन उसकी शादी होगी

और उसे पिता के घर को छोड़कर दूसरे घर जाना पड़ेगा। इसलिए, अच्छी शिक्षा के अभाव में वर्तमान में नौकरियों कौशल माँग की शर्तों को पूरा करने में असक्षम हो जाती हैं, वहीं प्रत्येक साल हाई स्कूल और इंटर मीडिएट में लड़कियों का परिणाम लड़कों से अच्छा होता हैं। अतः उपर्युक्त विवेचन के आझार पर कहा जा सकता हैं कि महिलाओं के साथ असमानता और भेदभाव का व्यवहार समाज में, घर में, और घर के बाहर विभिन्न स्तरों पर किया जाता हैं।

लैंगिक असमानता के कारक

- सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के बावजूद वर्तमान भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक मानसिकता जटिल रूप में व्याप्त है। इसके कारण महिलाओं को आज भी एक जिम्मेदारी समझा जाता है। महिलाओं को सामाजिक और पारिवारिक रुढ़ियों के कारण विकास के कम अवसर मिलते हैं, जिससे उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। सबरीमाला और तीन तलाक जैसे मुद्दों पर सामाजिक मतभेद पितृसत्तात्मक मानसिकता को प्रतिबिंबित करता है।
- भारत में आज भी व्यावहारिक स्तर (वैधानिक स्तर पर सर्वोच्च न्यायालय के आदेशानुसार संपत्ति पर महिलाओं का समान अधिकार है) पर पारिवारिक संपत्ति पर महिलाओं का अधिकार प्रचलन में नहीं है इसलिए उनके साथ विभेदकारी व्यवहार किया जाता है।
- राजनीतिक स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था को छोड़कर उच्च वैधानिक संस्थाओं में महिलाओं के लिए किसी प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था नहीं है।
- वर्ष 2017-18 के नवीनतम आधिकारिक आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण (Periodic Labour Force Survey) के अनुसार, भारतीय अर्थव्यवस्था में महिला श्रम शक्ति (Labour Force) और कार्य सहभागिता (Work Participation) दर कम है। ऐसी परिस्थितियों में आर्थिक मापदंड पर महिलाओं की आत्मनिर्भरता पुरुषों पर बनी हुई है। देश के लगभग सभी राज्यों में वर्ष 2011-12 की तुलना में वर्ष 2017-18 में महिलाओं की कार्य सहभागिता दर में गिरावट देखी गई है। इस गिरावट के विपरीत केवल कुछ राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों जैसे मध्य प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, चंडीगढ़ और दमन-दीव में महिलाओं की कार्य सहभागिता दर में सुधार हुआ है।
- महिलाओं के रोज़गार की अंडर-रिपोर्टिंग (Under-Reporting) की जाती है अर्थात् महिलाओं द्वारा परिवार के खेतों और उद्यमों पर कार्य करने को तथा घरों के भीतर किए गए अवैतनिक कार्यों को सकल घरेलू उत्पाद में नहीं जोड़ा जाता है।
- शैक्षिक कारक जैसे मानकों पर महिलाओं की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा कमजोर है। हालाँकि लड़कियों के शैक्षिक नामांकन में पिछले दो दशकों में वृद्धि हुई है तथा माध्यमिक शिक्षा तक लैंगिक समानता की स्थिति प्राप्त हो रही है लेकिन अभी भी उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं का नामांकन पुरुषों की तुलना में काफी कम है।
- महिलाओं को एनडीए में प्रवेश से वंचित किया, केंद्र द्वारा प्रतिक्रिया वकील कुश कालरा

द्वारा दायर एक याचिका पर आई, जो प्रतिष्ठित पुणे स्थित राष्ट्रीय रक्षा अकादमी (एनडीए) और केरल स्थित भारतीय नौसेना अकादमी (आईएनए) में प्रवेश पाने के लिए पुरुषों के बराबर महिलाओं के लिए समान अवसर की मांग की ।

- कोर्ट ने इस साल मार्च में याचिका पर नोटिस जारी किया था। कालरा ने कहा, "योग्य और इच्छुक महिला उम्मीदवारों को केवल उनके लिंग के आधार पर उक्त परीक्षा (एनडीए और नौसेना अकादमी की) में बैठने की अनुमति नहीं है... और भेदभाव का यह कृत्य समानता के संवैधानिक मूल्यों के प्रति उत्तरदाताओं द्वारा किया गया अपमान है। (अनुच्छेद 14) और भारत के संविधान में ग़ैर-भेदभाव (अनुच्छेद 15)। इसके अलावा, याचिका में अनुच्छेद 16 (सार्वजनिक रोज़गार के मामलों में समान अवसर) और अनुच्छेद 19 (पेशे का अभ्यास करने की स्वतंत्रता) का भी कथित उल्लंघन किया गया है।

लैंगिक असमानता के खिलाफ कानूनी और संवैधानिक सुरक्षा उपाय

- लिंग असमानता को दूर करने के लिए भारतीय संविधान ने अनेक सकारात्मक कदम उठाए हैं। संविधान की प्रस्तावना हर किसी के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त करने के लक्ष्यों के साथ ही अपने सभी नागरिकों के लिए स्तर की समानता और अवसर प्रदान करने के बारे में बात करती है। इसी क्रम में महिलाओं को भी वोट डालने का अधिकार प्राप्त हैं।
- संविधान का अनुच्छेद 15 भी लिंग, धर्म, जाति और जन्म स्थान पर अलग होने के आधार पर किए जाने वाले सभी भेदभावों को निषेध करता हैं। अनुच्छेद 15(3) किसी भी राज्य को बच्चों और महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान बनाने के लिए अधिकारित करता है। इसके अलावा, राज्य के नीति निदेशक तत्व भी ऐसे बहुत से प्रावधानों को प्रदान करता हैं जो महिलाओं की सुरक्षा और भेदभाव से रक्षा करने में मदद करता हैं।
- भारत में महिलाओं के लिए बहुत से संवैधानिक सुरक्षात्मक उपाय बनाए हैं पर जमीनी हकीकत इससे बहुत अलग हैं। इन सभी प्रावधानों के बावजूद देश में महिलाएँ के साथ आज भी द्वितीय श्रेणी के नागरिक के रूप में व्यवहार किया जाता हैं, पुरुष उन्हें अपनी कामुक इच्छाओं की पूर्ति करने का माध्यम मानते हैं, महिलाओं के साथ अत्याचार अपने ख़तरनाक स्तर पर हैं, दहेज प्रथा आज भी प्रचलन में हैं, कन्या भ्रूण हत्या हमारे घरों में एक आदर्श है।
- न्यायमूर्ति संजय किशन कौल और न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय की पीठ के समक्ष 8-09-2021 को सुनवाई के लिए मामला आने के साथ केंद्र ने कहा, "महिलाओं को सशस्त्र सेना में समान अवसर दिया जा रहा है।

  महिलाओं के रोज़गार के लिए खोले गए रास्ते में बल। सशस्त्र बलों में शामिल होने के लिए पुरुषों और महिलाओं के लिए उपलब्ध प्रवेश के तरीके के आधार पर किसी मौलिक अधिकार का कोई उल्लंघन नहीं है।

- हलफनामे में कहा गया है, कि एनडीए भारतीय सशस्त्र बलों में भर्ती के लिए प्रवेश के विभिन्न तरीकों में से एक है, जिसमें कहा गया है कि सेना में औसतन 1,470 अधिकारियों को कमीशन दिया जाता है, जिसमें भारतीय सैन्य अकादमी (आईएमए) और एनडीए के 670 अधिकारी शामिल हैं। ऑफिसर्स ट्रेनिंग एकेडमी (ओटीए) के अलावा, जहाँ पुरुष और महिला दोनों अधिकारियों को यूपीएससी और ग़ैर-यूपीएससी मोड के माध्यम से नियुक्त किया जाता है।
- औसतन 453 अधिकारियों (पुरुषों और महिलाओं) को यूपीएससी के माध्यम से एसएससी (ग़ैर-तकनीकी) और एसएससी (तकनीकी) के माध्यम से शॉर्ट सर्विस कमीशन अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया जाता है।
- हलफनामे में कहा गया है, "एनडीए में प्रशिक्षण पुरुष कैडेटों को अन्य प्रशिक्षण प्रतिष्ठानों/संस्थानों के समकक्षों की तुलना में कोई स्वतः लाभ नहीं देता है। भविष्य के कैरियर की उन्नति की संभावनाओं पर इसका कोई असर नहीं है। इसने सुझाव दिया कि किसी समकक्ष प्रशिक्षण अकादमी में प्रशिक्षण का चुनाव संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 या 19 के तहत लिंग के आधार पर भेदभाव का उल्लंघन नहीं हो सकता।
- नौसेना के संबंध में, हलफनामे में कहा गया है कि नौसेना में चार शाखाएँ हैं -- कार्यकारी, विद्युत, इंजीनियरिंग और शिक्षा और आज तक, सभी शाखाओं में महिलाओं के प्रवेश की अनुमति देने के लिए रोक हटा दी गई है। आज की तारीख़ तक, महिलाओं की भर्ती के लिए कार्यकारी शाखा नहीं खोली गई है। हलफनामे में कहा गया है कि हर साल लगभग 600 अधिकारी नौसेना में शामिल होते हैं, जिनमें से केवल लगभग 120 से 160 अधिकारी यूपीएससी परीक्षा के माध्यम से शामिल होते हैं, जबकि करीब 480 अधिकारी प्रवेश के अन्य तरीकों से शामिल होते हैं।
- भारत ने मैक्सिको कार्ययोजना (1975), नैरोबी अग्रदर्शी (Provident) रणनीतियाँ (1985) और लैंगिक समानता तथा विकास एवं शांति पर संयुक्त राष्ट्र महासभा सत्र द्वारा 21वीं शताब्दी के लिए अंगीकृत "बीजिंग डिक्लरेशन एंड प्लेटफार्म फॉर एक्शन को कार्यान्वित करने के लिए और कार्रवाइयाँ एवं पहलें जैसी लैंगिक समानता की वैश्विक पहलों की अभिपुष्टि की है।
- 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ', 'वन स्टॉप सेंटर योजना', 'महिला हेल्पलाइन योजना' और 'महिला शक्ति केंद्र' जैसी योजनाओं के माध्यम से महिला सशक्तीकरण का प्रयास किया जा रहा है। इन योजनाओं के क्रियान्वयन के परिणामस्वरूप लिंगानुपात और लड़कियों के शैक्षिक नामांकन में प्रगति देखी जा रही है।
- आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता हेतु मुद्रा और अन्य महिला केंद्रित योजनाएँ चलाई जा रही हैं।

इसके अलावा राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, सती प्रथा (निवारण) अधिनियम एवं नियमावली, महिलाओं के अश्लील प्रतिनिधित्व, दहेज प्रतिषेध नियमावली, दहेज प्रतिषेध

अधिनियम, 1961, राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (26.10. 2006 से लागू), महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न अधिनियम 2013 क़ानून शामिल हैं। (इन नियमों की जानकारी इस वेबसाइट द्वारा प्राप्त कर सकते हैं https://wcd.nic.in .act).

आगे की राह/निष्कर्ष

लैंगिक समानता के उद्देश्य को हासिल करना जागरूकता कार्यक्रमों के आयोजन और कार्यालयों में कुछ पोस्टर चिपकाने तक ही सीमित नहीं है। यह मूल रूप से किसी भी समाज के दो सबसे मज़बूत संस्थानों -- परिवार और धर्म की मान्यताओं को बदलने से संबंधित है। लैंगिक समानता का सूत्र श्रम सुधारों और सामाजिक सुरक्षा क़ानूनों से भी जुड़ा है, फिर चाहे कामकाजी महिलाओं के लिए समान वेतन सुनिश्चित करना हो या सुरक्षित नौकरी की गारंटी देना। मातृत्व अवकाश के जो क़ानून सरकारी क्षेत्र में लागू हैं, उन्हें निजी और असंगठित क्षेत्र में भी सख़्ती से लागू करना होगा। जेंडर बजटिंग और समाजिक सुधारों के एकीकृत प्रयास से ही भारत को लैंगिक असमानता के बंधनों से मुक्त किया जा सकता है। लैगिक समानता का सिद्धांत भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों, मौलिक कर्त्तव्यों और नीति निर्देशक सिद्धांतों में प्रतिपादित है। संविधान महिलाओं को न केवल समानता का दर्जा प्रदान करता है अपितु राज्य्य को महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव के उपाय करने की शक्ति भी प्रदान करता है। प्रकृति द्वारा किसी भी प्रकार का लैंगिक विभेद नहीं किया जाता है। समाज में प्रचलित कुछ तथ्य जैसे -- महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा जैविक रूप से कमजोर होती हैं इत्यादि केवल भ्रांतियाँ हैं। दरअसल महिलाओं में विशिष्ट जैविक अंतर, विभेद नहीं बल्कि प्रकृति प्रदत्त विशिष्टाएँ हैं, जिनमें समाज का सद्‌भाव और सृजन निहित हैं।

❑

संदर्भ

1. https://thehindu.com
2. https://thelogicalindian.com
3. https://www.indiatoday.in
4. https://www.drishtias.com
5. https://www.unicef.org
6. https://hi.wikipedia.org
7. https://wcd.nic.in

Neha Rathee

Acid Attack : A Legal Analysis

Indian society from the time immemorial has placed women on a very high position. In fact they enjoyed a revered position and we as a part of society have been told about their importance and strength to such an extent that we address her as a Devi (i.e. female deity). It is believed that——

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

But unfortunately, reality is quite different. At least National Crime Record Bureau (NCRB) statistical data on crimes against women depicts an entirely different picture regarding situation of women in our society. A large number of crimes like rape, assault, acid attack, kidnapping and abduction, homicide for dowry, torture, molestation etc. are being committed against women in a broad day light and the most unfortunate aspect of this situation is that maximum number of such crimes is either goes unreported or justice could not be given in these cases as culprit find an easy escape by twisting the law according to their convenience.

Out of all the above stated crimes against women, acid attack is one of the most heinous crimes,[1] Though acid attack is a crime which can be committed against any man or women, it has a specific gender dimension in India. Most of the reported acid attacks have been committed on women particularly young women for spurning suitors, for rejecting proposal of marriage, for denying dowry etc. The attacker cannot bear the fact that he has been rejected and seeks to destroy the body of the woman who has dared to stand up to him.

Acid attack is an easiest way to hurt a woman. It is often referred to as a “crime of passion” fuelled by jealousy and revenge. It is a crime in which perpetrator splash acid (mostly hydrochloric, sulphuric acid) over victim's face in order to deface or kill her.

Effect

[1(a)]Hydrochloric,sulphuricand other acids have a catastrophic effect on human flesh. These corrosive substance cause the skin tissue to melt. The bones of victim become exposed and sometimes the acid dissolves the bones too. As the acid melts flesh and even the bones of a person, it causes an unparalleled degree of pain to the victim and leaves her mutilated and scarred

as well as giving permanent disabilities at times such as blindness.

It has a long lasting effect on the life of victim who normally feels worthless and become social outcast because of their appearance. Even if they are willing to pursue a normal life, there is no guarantee that the society will accept or treat them as a normal human being due to the appearance and disabilities after attack. There remains high chance that they may not be able to work or able to find a job and does perpetually struggle to survive. This deprives them even their constitutional right to life and liberty provided under article 21 of Indian Constitution. **Article 21 of Constitution of India provides that** ——-

[2]*"No person shall be deprived of his life or personal liberty expect according to procedure established by law."*

It thus guarantees the right to life and liberty of every individual. In **BUDHADEV KARMASKAR V. STATE OF WEST BENGAL, AIR 2011** it has been stated by court that the word 'LIFE' in Article 21 means a life of dignity and not just an animal life. Therefore, it has been interpreted to include the right to live with dignity and would encompass the right to live with dignity of all including victims of acid attack.

The legal system before 2013

Prior to 2013, Indian legal system was inadequate to address acid attack as it had no specific provision to either criminalize such crime or to provide adequate compensation to the victims. As India had no separate law governing the crime of acid attack, cases had been registered under different sections of Indian Penal Code particularly under section related to hurt, grievous hurt, grievous hurt by corrosive substances and even under attempt to murder and murder.

[1(b)]Traditionally, the offence is dealt with under section 326 of IPC which deals with voluntary causing grievous hurt by dangerous weapon or means. This provision also deals with causing grievous hurt using corrosive substances which includes acid.

Section 326 of IPC provides that—

[3]*Whoever, except in the case provided for by section 335, voluntarily causes grievous hurt by means of any instrument for shooting, stabbing or cutting, or any instrument which, used as a weapon of offence, is likely to cause death, or by means of fire or any heated substance, or by means of any poison or any corrosive substance, or by means of any explosive substance, or by means of any substance which it is deleterious to the human body to inhale, to swallow, or to receive into the blood, or by means of any animal, shall be punished with 1[imprisonment for life], or with imprisonment of either description for a term which may extend to ten years, and shall also be liable to fine.*

Prosecutions under such section of IPC were problematic due to the broad and generalized nature of these laws. There were no specific charges for acid attacks and in absence of any specific charges, gruesome act of acid attack

was dealt in sections like —

1. Section 323 (punishment for voluntarily causing hurt) which provides for punishment up to 1 year imprisonment or fine of rupees 1000 or both.

2. Section 324(voluntarily causing hurt by dangerous weapons for means) which provides for imprisonment for 3 years or fine or both.

3. Section 325(punishment for voluntary causing grevious heart) which provides for imprisonment for 7 years and fine.

4. Section 326(voluntarily causing grievous heart by dangerous weapon or means) which provides for imprisonment for life or imprisonment for 10 years and fine.

The sections for these general crimes only prescribe an upper limit for imprisonment term which gives court discretion to impose much lower prison terms. Moreover these laws neither specify the fine nor States whether the fine could be provided to an acid attack victim as compensation.

In some cases, either victim were not compensated at all **(AvdheshRai v. state of Jharkhand 2006)** or the compensation provided to them was usually inadequate and inconsistent, sometimes as low as Rs. 5000 **(Balu v. state, 2004).** Such a small amount was clearly inadequate to cover victim expenses for corrective surgeries and psychological counseling.

It was observed in 226th report of Law Commission that

"However, since no special section in the Indian Penal Code deals with acid attacks, the incidents are not even recorded separately; Section 326 of I.P.C. which deals with causing grievous hurt by throwing of a corrosive substance etc. is insufficient/inadequateto deal with the issue. Firstly, the definition of grievous hurt is not broad enough to cover various kinds of injuries which are inflicted during acid attacks. Secondly, the section does not cover the act of administering acid. Thirdly, the section gives a wide discretion to courts as far as punishment is concerned, the cases in India show that normally inadequate punishment is awarded in these cases. Fourthly, the section in IPC does not punish the intentional act of throwing of acid if no injuries occur. Lastly, the section also does not specify who the fine should be awarded to."

After 2013

Changes in scenario with regard to acid attack cases came about when Lakshmi, an acid attack victim filed a PIL in 2006 to the Supreme Court of India asking for stricter laws in this regard. The situation improved substantially after 2013. **Justice Verma Committee** constituted by the Central Government in 2013 in the aftermath of **'Nirbhaya Case'** to suggest reform in criminal justice system recommended that acid attacks is defined as an offence in IPC.It was during the pendency of the case Lakshmi v. Union of India, 2015 section 326A and 326B were inserted in IPC for the offence of acid attack by the virtue of Criminal Law Amendment Act. While Section 326 mentions grievous hurt by means of any poison or any corrosive substance, section 326A elaborates this

issue. **Section 326 A of IPC provides that —**

'Whoever causes permanent or partial damage or deformity to, or burns or maims or disfigures or disables, any part or parts of the body of a person or causes grievous hurt by throwing acid on or by administering acid to that person, or by using, any other means with the intention of causing or with the knowledge that he is likely to cause such injury or hurt, shall be punished with imprisonment of either description for a term which shall not be less than ten years but which may extend to imprisonment for life, and with fine provided that such fine shall be just and reasonable to meet the medical expenses of the treatment of the victim:

Provided further that any fine imposed under this section shall be paid to the victim.

Thus, it says that voluntarily throwing and administering acid with the knowledge that it will cause hurt and with the intention to cause hurt is within the purview of this section. For this section to take effect damage, either permanent of partial,must be caused to the victim of acid attack. This section provides for the imprisonment for not less than 10 years which can be extended to imprisonment for life as well as fine. The fine mentioned here should be just and reasonable to meet the medical expenses of the treatment of the victim. Further, it should be paid directly to the victim. As it is clear by harsher punishment prescribed by section 326A, this offence is considered graver in nature than section 326.

On the other hand, section 326B makes even the attempt of throwing acid punishable. **Section 326B of IPC provides that—**

'Whoever throws or attempts to throw acid on any person or attempts to administer acid to any person, or attempts to use any other means, with the intention of causing permanent or partial damage or deformity or bums or maiming or disfigurement or disability or grievous hurt to that person, shall be punished with imprisonment of either description for a term which shall not be less than five years but which may extend to seven years, and shall also be liable to fine.

Explanations

1. For the purposes of section 326A and this section, "acid" includes any substance which has acidic or corrosive character or burning nature, that is capable of causing bodily injury leading to scars or disfigurement or temporary or permanent disability.

2. For the purposes of section 326A and this section, permanent or partial damage or deformity shall not be required to be irreversible.

Section 326 required that bodily injury be caused to the victim. However in cases when the attempt to injure someone is foiled and no damage occurs to the intended victim, the person attempting to commit the crime can also be punished by law now. Now Section 326B criminalizes such an attempt. The

punishment prescribed for an attempt to commit an acid attack is minimum imprisonment for 5 years with might be extended up to 7 years well as fine. Scope of word 'acid' used in these sections is quite wide. Explanation 1 to these and sections (i.e. section 326A AND 326B) explains that word acid includes any substance which has acidic or corrosive character or burning nature that is capable of causing bodily injury leading to scars or disfigurement or temporary or permanent disability. Honorable High Court of Delhi in **Hakim v NCT of Delhi** has clearly stated that section 326A covers a situation where partial or permanent damage / deformity / burn/ grievous hurt to any part of the body cannot only be caused by acid but by any other mean. Court in **Hakim versus and NCT of Delhi** has stated that ——

"The word acid therefore as used in section 326A is not merely restricted to substances which are classically / scientifically termed as acid but extends and includes all those substances which have acidic/ corrosive/ burning nature and are capable of causing scarring/ disfigurement/ temporary or permanent disability. "

By including phrase**" any other means"** the legislature ha sintended to apply section 326 A to a larger set of substances / methods which may cause such injuries to the person.

Thus after 2013 by virtue of section 326A and 326B throwing as well as attempt to throw acid is criminalized. It was during the pendency of the case **Lakshmi v. union of India and others 2015** the penal code was amended on the recommendation of justice Verma Committee and appropriate sections were inserted. Meanwhile, the court established extensive guidelines for regulating the sale of acid in India.

Furthermore to avoid acid assault, Supreme Court outlawed the counter sale of the chemical unless the vendor kept a record of the buyers' information. A dealer can sell the chemical to a buyer only if he present a government issued picture ID and stated the reason for its purchase. Supreme Court also ruled that victims would receive full medical aid and ordered both public and private hospitals to provide free medical treatment to such victims. It was directed by the court that——-

[4]1. The private hospital should not refuse treatment to the victim of acid attack and that full treatment should be provided to such victims including medicines ,food, bedding and reconstructive surgeries.

2. Hospitals where the victims of an acid attack is first treated, should give a certificate that the individual is a victim of an acid attack. This certificate may be utilised by the victim for the treatment and reconstructive surgeries or any other scheme that the victim may be entitled to with the State government or the Union Territory as the case may be.

3. In the event of any specific complaint against any private hospital or government hospital, the acid attack victim will, of course, be at liberty to take further action.

It was in**Laxmi vs UOI** the Supreme Court of India held that an amount of Rs. 3 lakh should be awarded as compensation to acid attack victims for after care and rehabilitation. But the court in Laxmi case did not clarify whether the compensation amount awarded was restricted to rupees 3 lakh only or whether court could grant more compensation. This issue was cleared by Supreme Court in **Parivartan Kendra v. Union of India, 2015** in which it was declared that the compensation was not restricted only to three lakh and that the court had discretion to award a compensation greater than Rs. 3 lakh.

[5]An important direction given in this case was that all the State and the Union Territory should consider the plight of such victims and take appropriate steps with regard to inclusion of their names under disability list.

Acid attack cases

Although India has taken effective steps to control the cases of acid attack, still the picture more or less remains the same. Recently in a reply to a parliamentary question regarding number of acid attacks reported during last 3 years. Minister of State in Ministry of Home Affairs Stated in that [6]National Crime Record Bureau compiles and published statistical data on crimes in its publication 'Crime in India' and as per latest edition of this publication there were 228, 249 and 182 cases reported in year 2018, 2019 and 2020 respectively in India. The data reveals that a high number of cases are still occurring despite the stringent laws in this regard.

It is noteworthy that the data here is about the cases which are reported, there might be a large number of cases which goes unreported. A part from that, conviction rate in such cases is slow. Delay in disposal of the cases is another problem. In India, the judicial process is time consuming which exposes acid attack victim to numerous hurdles in securing justice. It not only deters witness's zeal to appear in court to testify against accused but also weakens the evidence in the case because over time a victim may not remember detail as well as she would if the trial was held soon. It also discourages victim from staying involve in the process because the delay imposes additional financial burden on them.

The extremely low conviction rate in India can also be attributed to the absence of presumption of guilt section in Indian evidence act like section 114A. 226th report of Law Commission also recommended that in cases of acid attack, a presumption be incorporated in Indian Evidence Act as section 114B —

[1©]"We further propose for the reasons stated above that in cases of acid attack, a presumption be incorporated in the Indian Evidence Act as section 114B. The proposed section 114B of Indian Evidence Act shall read as under.

Section 114B: Presumption as to acid attack— If a person has thrown acid on or administered acid to another person, the court shell presume that such an act has been done with the intention of causing or with the knowledge

that such an act is likely to cause such hurt or injury as is mentioned in Section 326A of the Indian Penal code.

The amendment act inserted section for the court to presume the absence of consent in case of rape (section 114A Indian Evidence Act) but it fail to provide a similar section in the act by which prima facie evidence of guilt could be presumed in acid attack case. But the proposal which was made in this regard into 2006 law commission report was abandoned.

Conclusion

Acid attack in India is still prevalent. Despite various steps taken by government to curb this crime, acid attacks are still on rise. Though the situation has changed a lot after 2013 still a lot more have to be done.

First and foremost steps towards curbing this crime are to accurately determine the actual incidence rate. However, the available data are not accurate because many cases of acid attacks are never reported. Another problem in obtaining justice is inadequate in legal system of India. It is a famous quote that "JUSTICE DELAYED IS JUSTICE DENIED" but unfortunately it is the harsh reality of our legal system. Several years passed before a final verdict is given in any case.

India's patriarchal culture is also one of the main reasons for the occurrence of this crime.[1(d)] "*Acid Attacks on women are a systemic form of gendered sexual violence. Unlike acid attack on men, these attacks are used as a weapon to silence and control women by destroying what is constructed as a primary constituent of her identity, i.e., her body. It is important than for any campaign against acid attacks to mobilize public opinion towards recognizing acid attacks as a form of gendered sexual violence and more importantly to recognize the patriarchal notions underlying these attacks."*

Apart from above mentioned problem, there is a frequent violation of guidelines set by court in Lakshmi versus Union of India case. Acid is still easily available in the market.

The following steps should be adopted to ensure justice to the victim and prevent acid attack cases.

Effective steps must be taken to collect and maintain accurate data regarding acid attack cases. First step towards achieving this objective is to create awareness among mass about importance of reporting such cases. This will certainly bring a change, as a large number of such cases goes unreported (especially those which falls under the purview of section 326B, i.e., attempt to throw acid). This would attract the attention of NGOs and other organizations that work to prevent such crimes.

States must ensure that the guidelines laid down bySupreme Court of India in Laxmi v Union of India are diligently followed. Various guidelines regarding over the counter sale of acid, compensation to the victim for treatment and corrective surgeries etc. have been given by court in this case. It is the duty of

the State to ensure the compliance of these cases as [7]National Governments hold the ultimate responsibility for introducing and implementing laws and policies around acid violence against women and girls.

Police must be directed to complete their investigations on time. They should be directed to register FIRs in such cases promptly and to complete the investigation as soon as possible. Further, protection of witnesses is to be ensured. Fast track trial of such cases should also be ensured. This will help a lot in speedy delivery of justice.

Another important step which should be taken in this regard is that the Section 114B should be added to Indian Evidence Act by way of amendment to improve the conviction rates.

Government should undertake a public awareness program about importance of thoroughly washing victims face with water immediately after an acid attack in order to reduce the severity of injury .Public must also be educated to treat acid attack victim normally. They should be included in mainstream of the society, they should be assured opportunities to obtain employment and education.

And last but not the least, we should start teaching our children to respect the women. As they say “A child is the father of the man” i.e. the behavior and activities of a person’s childhood go a long way in building his personality. Thus, today if we teach our children to respect a female or to treat them equally tomorrow it will certainly reflect in their character and will help to reduce such crimes against women which undermine the very fabric of civilized society.

❑

References

1. 226th Report of Law Commission of India(PROPOSAL FOR THE INCLUSION OF ACID ATTACKS AS SPECIFIC OFFENCES IN THE INDIAN PENAL CODE AND A LAW FOR COMPENSATION FOR VICTIMS OF CRIME)
2. The Constitution Of India.
3. The Indian Penal Code.
4. Laxmi V. Union Of India &Ors, 2015
5. NALSA (Legal Services To Victims Of Acid Attacks) Scheme,2016
6. RajyaSabhaUnstarred Question No. 1659, dated 16th March, 2022 regarding Cases Of Acid Attacks In India.
7. Acid Survivors Trust International.

Yashasavi Singh

A Study of NDPS Act Relating to Control and Regulation of Drugs and Alcoholism in India

Drug abuse is a pervasive phenomenon and a negative trend in society. Trafficking of drugs is also the fastest growing business in the world. The epidemic of substance abuse in the young generation has assumed alarming dimensions in India. Cannabis, heroin, and Indian-produced pharmaceutical drugs are the most frequently abused drugs in India. Excessive use of both illicit and illicit substances causes public health hazards. cannabis (ganja) also grows unaided in many parts of the country. It has also been reported that it is cultivated in hilly terrains in some parts of the country. Cheap and easy availability due to cross-border smuggling of drugs is a major reason for increasing drug abuse in India. The use of psychoactive substances causes significant health factors such as Damage to organs, such as the heart, brain, and liver diseases, such as heart disease, HIV, and cancer, Development of mental illnesses, suicides, and Permanent changes to hormonal or nervous systems. According to a UN report, one million heroin addicts are registered in India. In this paper, the researcher will deplore the present pattern of drug addiction and alcoholism in India. And also focuses on the vulnerabilities of the laws related to narcotics drugs and have relevant laws succeeded in dealing with this evil? The researcher will explore the results and findings that the human rights violated by the use of drug abuse in India. Finding also signifies the enforcement system and ascertaining the existing law in India is in tune with the international conventions in this regard. This paper will also deplore the suggestions regarding loopholes in Indian Laws regarding drug abuse and how to minimize the drug abuse in Indian society.

Key Words : Drug Abuse, Laws, Narco terrorism, Human Rights, Narcotic Drugs, Trafficking of Drugs

Introduction

Abuse of drugs and Alcoholism has emerged as an international problem. Trafficking of the drug is also the fastest growing business in the world. This trap has spread in every nook and corner of the world. Drugs have become a part of their lives. These people have become so addicited to drugs, that if someone

opposes it then they also kill him. It is difficult to define drug addiction as it is a technical term. In broader terms, addiction represents a strong craving for a particular substance. Mostly, it is considered by the user to repeat the intake of a substance gradually, which he uses for a long time. It becomes an addiction. A few years ago, drug addiction was an incident that was limited to only Western and more prosperous countries. But now it is spreading rapidly even in poor and underdeveloped countries. In the developed countries, where it is used in a normal form, the same is used in the underdeveloped and poor countries for the sake of happiness.

DRUG : The term 'Drug' simply only to a chemical compound that is used for the treatment of diseases. The word 'DRUG' is derived from the French word "DROGUE" which means a dry herb.[1] According to Drug and Cosmetic Act, 1940 drug" includes all medicines intended for internal or external use for or in the diagnosis, treatment, mitigation or prevention of disease or disorder in human beings or animals, and manufactured exclusively by the formulae described in, the authoritative books of (Ayurvedic, Siddha and Unani Tibb systems of medicine, specified in the First Schedule).

"Drug" includes: - (i) All medicines for internal or external use of human beings or animals and all substances intended to be used for or in the diagnosis, treatment, mitigation, or prevention of any disease or disorder in human beings or animals, including preparations applied on the human body to repel insects like mosquitoes.

(ii) Such substances (other than food) intended to affect the structure or any function of the human body or intended to be used for the destruction of (vermin) or insects which cause disease in human beings or animals, as may be specified from time to time by the Central Government by notification in the Official Gazette.

(iii) All substances intended for use as components of a drug including empty gelatine capsules and;

(iv) such devices intended for internal or external use in the diagnosis, treatment, mitigation or prevention of disease or disorder in human beings or animals, as may be specified from time to time by the Central Government by notification in the Official Gazette, after consultation with the Board.[2]

Examples of drugs are- Alcohol, Tobacco, Cocaine from coca, Opium, opioids from poppy plants, Hashish or marijuana from cannabis, and Synthetic drugs such as heroin, ecstasy, and LSD.[3]

Drug Abuse : Drug abuse information clearly states drug abuse is an extreme desire to obtain, and use, increasing amounts of one or more substances. Drug abuse is a generic term for the abuse of any drug, including alcohol and cigarettes.[4] substance abuse is a substance use disorder characterized by the use of a mood or behavior-altering substance in a maladaptive pattern resulting in significant impairment or distress, such as failure to fulfill social or occupational obligations or recurrent use in situations

in which it is physically dangerous to do so or which end in legal problems, but without fulfilling the criteria for substance dependence. Specific disorders are named for their etiology, such as alcohol abuse and anabolic steroid abuse.[5]

NARCOTIC DRUG : Narcotics are addictive drugs that reduce the user's perception of pain and induce euphoria (a feeling of exaggerated and unrealistic wellbeing). The English word narcotic is derived from the Greek narkotikos, which means "numbing" or "deadening". Although the term can refer to any drug that deadens sensation or produces stupor, it is commonly applied to the opioids that are, all-natural or synthetic drugs that act like morphine. Narcotics are central nervous system depressants that produce a stupor state in the person who takes them. These drugs often induce a state of euphoria or feeling of extreme wellbeing, and they are powerfully addictive. The body quickly builds a tolerance to narcotics in as little as two to three days, so greater doses are required to achieve the same effect. Because of the addictive qualities of these drugs, most countries in the twenty-first century have strict laws regarding the production and distribution of narcotics.

According to the NARCOTIC DRUGS AND PSYCHOTROPIC SUBSTANCES, ACT, 1985

The term "Narcotic Drug" means coca leaf, cannabis (hemp), opium, poppy straw and includes all manufactured drugs.[6]

PSYCHOTROPIC SUBSTANCE : A psychoactive, psychopharmaceutical, or psychotropic is a chemical substance that changes brain function and results in alterations in perception, mood, or consciousness. According to the NARCOTIC DRUGS AND PSYCHOTROPIC SUBSTANCES, ACT, 1985 "Psychotropic substance" means any substance, natural or synthetic, or any natural material or any salt or preparation of such substance or material included in the list of psychotropic substances specified in the Schedule.[7]

DRUG ADDICT : A drug addict is someone who becomes physically, emotionally, and psychologically dependent on the drugs/substances, the absence of which will create withdrawal symptoms in the person. A drug addict is one who habitually takes drugs. A drug addict uses drugs every day and finds it hard to stop using. An addict is a man or woman whose life is controlled by drugs, or who is under bondage. According to the Narcotic Drugs and Psychotropic Substance Act, 1985, "Addict" means a person who is dependent on any narcotic drugs or psychotropic substance".[8]

ALCOHOLISM : Alcoholism, also known as Alcohol Use Disorder (AUD), is a comprehensive term for drinking alcohol that is a result of mental or physical health problems. It was divided into two types: alcohol abuse and alcohol dependence. Alcoholism, also called alcohol dependence, is a passive addiction disorder that is characterized as compulsive and uncontrolled alcohol addiction, while the peanut hurts the health of the person and to see negative social consequences in his life. See you here. Alcoholism, like other drug addictions, has been defined as a treatable disease in terms of therapy. It was called alcoholism before alcohol dependence was replaced by the word

alcoholism.

IN INDIA : In 1947, when India became independent, a strong movement was developed against alcohol distribution and consumption in the whole country. In the Indian Constitution, Prohibition was laid down in the Directive Principles of State Policy. Since independence, the central and also many state governments passed the prohibition laws, Two states namely, Bombay and Madras, introduced abstinence laws by 1951 Other states also passed the same legislation.

A HISTORY OF USING DRUGS AND ALCOHOL: - The use of drugs in the history of mankind is old. Drugs have played a role in every culture throughout history, whether it is used for medical, religious, or recreational purposes. The history of drugs exposes the history of humanity and explores the long relationship between mankind and mind-altering substances. Records of cannabis use date back thousands of years; hallucinogenic drug use in religious ceremonies shows up worldwide. The use of opium is for the beginning of civilization and the chewing of coca leaves by the laborers extends back thousands of years. Almost all the primitive and modern societies have used some mood-modified drugs and in some cases, it was alcoholic only. During the past 100 years, advances in chemistry and pharmacology (the science of drugs) have allowed the formation of new drugs from the old sources. Opium was processed and refined in morphine and heroin. Coca leaves were processed and refined in cocaine and crack. Amphetamines a new class of stimulants was synthesized in the laboratory, as were new hallucinogenic drugs such as LSD, Ecstasy, and MDA. These new drugs and refined vintage drugs are more powerful and addictive than any drugs in the past. While there has been considerable progress in the creation and utilization of drugs for medical use has increased rapidly.

OBJECTIVES OF THE STUDY

1. To study what is drug abuse and alcoholism in India.
2. To study & analyze the effectiveness or importance of the NDPS Act, to control narcotics drugs and Psychotropic substances.

RESEARCH METHODOLOGY

The methodology used for this research has been based primarily on documentary research. This approach among legal scholars is known as doctrinal research. The purpose of this study is to find out the effectiveness of the law as a means to prevent and control drug abuse, alcoholism, and illegal drug trafficking in India. To assess the merits and demerits of the existing laws in India. The area of study is a complex and multi-dimensional one that requires a basic knowledge of different types of drugs and narcotics produced, illegally trafficked, used, and abused in India. In addition, the historical method has been used for bringing out the history and development of drug abuse and illegal drug trafficking.

SOURCES

To realize the objectives of the study, the material has been used from primary and secondary sources:

Primary Sources: Opium Act 1888, Drug and Cosmetic Act, Dangerous Drugs Act 1930, the Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act, 1985.

Secondary Sources: Books by reputed authors, answers to Lok Sabha questions, articles from journals, and newspaper reports on drug seizure and addiction.

DRUG CONTROL AT NATIONAL LEVEL : CONSTITUTIONAL PROVISIONS, LAWS AND POLICIES

The Directive Principles of State Policy under Article 47 of the Constitution directs the State to regard the raising the level of nutrition and the standard of living of its people and the improvement of public health as among its primary duties and particularly harmful to health, except for medicinal purposes. Attempts have been made to bring about drugs and prohibition of consumption. This instruction received legal support through the Narcotics Drugs and Psychotropic Substances Act, 1985, which provides stricter control and regulation of work related to narcotic drugs and Psychotropic Substances; At the same time, the government has given the right to set up many centres because it is suitable for social re-integration of identity, treatment, education, care, rehabilitation, addicts; To establish rules for the establishment, maintenance, management and notification of such centers and the appointments of persons employed in such centres, training, powers, duties, and functions.

THE NARCOTIC DRUGS AND PSYCHOTROPIC SUBSTANCES ACT, 1985 : Article 253 of the Constitution empowers the Parliament to legislate to discharge obligations under international conventions and foreign treaties. The Narcotics Drugs and Psychotropic Substances Act, 1985 was enforced in November 1985, in which one of the reasons was to effect the provisions of the existing UN Conventions. It contains strict provisions for the control and regulation of narcotic drugs, psychotropic substances, and preceding chemicals. It also provides the necessary framework and appropriate provisions for administrative action. Section 71 of the Act empowers the Government to establish centres for identification, treatment, education, after-care, rehabilitation, etc of addicts and for supply of narcotic drugs and psychotropic substances to addicts, where such supply is a medical requirement.

THE FOLLOWING OBJECTIVES OF THE NDPS ACT, 1985:

(i) To provide deterrent punishments to drug offenders.

(ii) Investing of central agencies with the powers of investigation of drug offenses.

(iii) To take care of obligations arising under certain international conventions

on drugs to which India is a party, and

(iv) To control the psychoactive substances contained within the Convention on Psychotropic Substance 1971.

PENALTIES AND OFFENCES: - In chapter IV under NDPS Act have been set penalties for crimes. These offenses are essentially related to the violation of various prohibitions imposed under the Act on the cultivation, production, manufacture, distribution, sale, import, and export of narcotic drugs and psychotropic substances. All these offences are cognizable and nonbailable. and are triable by Special Courts, and very stringent punishments are provided. ranging from six months minimum to a maximum of thirty years imprisonment depending upon the nature of the offenses. Imprisonment cranges from ten to twenty years for first offenses to fifteen to thirty years for any subsequent offences together with fines up to two lakhs; provided that the court may have reasons to be recorded in the judgments, impose a fine exceeding two lakh rupees; and the punishment shall be based on the “quantity involved”.

CONCLUSION & SUGGESTIONS

In India, people using drug substances have become completely trapped in their society, not just on its fringes, and that too irrespective of caste, creed, and social and economic levels. Traditionally, opium and cannabis Derivatives, LSD, Mandrax, Cocaine Barbiturates, etc. have been used by drug addicts. NDPS Act 1985 is a very comprehensive law with unique features: In some circumstances. However, this Act is quite harsh, and although the outcome of this Act is being affected on the offenders, there is a hitch-to-death trial, which becomes innocent. The result is overcrowding of jails. About the ineffective effect of another ambiguity raised the Provision under Section 50 if a person who has been arrested for possessing drugs is not taken to the nearest Magistrate or gazetted officer immediately, the contraband seized cannot be used to fix the liability of unlawful possession against him and under Section 42 of the Act, if the police officer who visits, fails to notify the senior officials of his base, the accused is responsible for being innocent. Although certain special features of the NDPS Act, of 1985 are unique (eg. In some circumstances, there is no possibility of bail, there is a burden to prove the innocence of the accused in opposition to common jurisprudence, where a person is considered innocent until proven guilty), and it is not free from defects and criticisms.

SUGGESTIONS : The NDPS Act has failed to make any major impact on the drug scene in the country. It has been stated in this research that the policy behind this Act is not based on the sound principles of criminal science. The mandatory minimum sentence of harsh imprisonment for 10 years, despite the seriousness of the crime, seems to be very harsh, particularly in respect of offenses of petty nature.

1. There is no provision for anticipatory bail under the NDPS Act. Due to the nonavailability of such provisions, the persons who are arrested even with a small number of drugs have to languish in jail for a very long time. Thus,

it is suggested by the researcher that in cases where the punishment is less than three years, the provision of anticipatory bail should be made.

2. In the NDPS case, the trial court has to work as a magistrate in the court. Due to the filing of reports under Section 173, the unnecessary delays in the completion of these formalities and a lot of time spent in the special court are wasted. It should also be improved because the special courts have been formed under the NDPS Act for early disposal of litigation, The magistrate should be given the power to complete the formalities of remand, etc. Therefore, the time of special courts can be saved.
3. Amendments in the existing NDPS Act for dealing with internet pharmacies.
4. Problem of drugs and alcoholism is a big challenge to the nation. For this, the government should aware to provide education at the school and college levels.

❑

Refrences

1. Sources and nature of drug dosage form (General principal Of Pharmacology), available at https://www.slideshare.net/samghany/sources-and-dosage-forms-of-drugs (last visited on June 17, 2022).
2. Sec. 3 (b), The Drugs and Cosmetic Act, 1940
3. Ananya Mandal, "what is Drug abuse" NMLS, available at https://www.news-medical.net/health/What-is- Drug-Abuse.aspx (last visited on June 17, 2022).
4. Natasha Tracy, "what is Drug abuse? Drug abuse information" Healthyplace, available at https://www.healthyplace.com/addictions/drug-addiction/what-is-drug-abuse-drug-abuse-information (last visited on June 17, 2022).
5. Drug abuse definition, thefreedictionary, available at https://medicaldictionary.thefreedictionary.com/drug+abuse (last visited on June 17, 2022).
6. Bare act, The Narcotics Drugs and Psychotropic Substance Act, 1985.
7. *Ibid.*
8. Sec 2 (i), The Narcotics Drugs and Psychotropic Substance Act, 1985

Dr. Dinesh Babu

Punishment Policy in India : In the Light of a New Track for Capital Punishment

1. Introduction

It is the duty of every Court to award proper sentence having regard to the nature of the offence and the manner in which it was executed or committed, the aggravating and mitigating factors and circumstances in which a crime has been committed are to be delicately balanced on the basis of really relevant circumstances in a dispassionate manner by the Court. Such act of balancing is indeed a difficult task Thus, no formula of a fool proof nature is possible that would provide a reasonable criterion in determining a just and appropriate punishment in the infinite variety of circumstances that may affect the gravity of the crime?[2] In the absence of any fool proof formula which may provide any basis for reasonable criteria to correctly assess various circumstances germane to the consideration of gravity of crime, the discretionary judgment in the facts of each case, is the only way in which such judgment may be equitably distinguished. [1]

2. CONCEPTUAL ANALYSIS OF PUNISHMENT

Punishment, commonly, is the imposition of an undesirable or unpleasant outcome upon a group or individual, meted out by an authority in contexts ranging from child discipline to criminal law as a response and deterrent to a particular action or behavior that is deemed undesirable or unacceptable. It is, however, possible to distinguish between various different understandings of what punishment is. The reasoning for punishment may be to condition a child to avoid self-endangerment, to impose social conformity (in particular, in the contexts of compulsory education or military discipline), to defend norms, to protect against future harms (in particular, those from violent crime), and to maintain the law and respect for rule of law under which the social group is governed. Punishment may be self-inflicted as with self-flagellation and mortification of the flesh in the religious setting, but is most often a form of social coercion.

The unpleasant imposition may include a fine, penalty, or confinement, or be the removal or denial of something pleasant or desirable. The individual may

be a person, or even an animal. The authority may be either a group or a single person, and punishment may be carried out formally under a system of law or informally in other kinds of social settings such as within a family. Negative consequences that are not authorized or that are administered without a breach of rules are not considered to be punishment as defined here. The study and practice of the punishment of crimes, particularly as it applies to imprisonment, is called penology, or, often in modern texts, corrections; in this context, the punishment process is euphemistically called “correctional process”. Research into punishment often includes similar research into prevention.

Justifications for punishment include retribution, deterrence, rehabilitation, and incapacitation. The last could include such measures as isolation, in order to prevent the wrongdoer’s having contact with potential victims, or the removal of a hand in order to make theft more difficult. If only some of the conditions included in the definition of punishment are present, descriptions other than “punishment” may be considered more accurate. Inflicting something negative, or unpleasant, on a person or animal, without authority is considered revenge or spite rather than punishment. In addition, the word “punishment” is used as a metaphor, as when a boxer experiences “punishment” during a fight. In other situations, breaking a rule may be rewarded, and so receiving such a reward naturally does not constitute punishment. Finally the condition of breaking (or breaching) the rules must be satisfied for consequences to be considered punishment.

Punishments differ in their degree of severity, and may include sanctions such as reprimands, deprivations of privileges or liberty, fines, incarcerations, ostracism, the infliction of pain, amputation and the death penalty. Corporal punishment refers to punishments in which physical pain is intended to be inflicted upon the transgressor. Punishments may be judged as fair or unfair in terms of their degree of reciprocity and proportionality to the offense. Punishment can be an integral part of socialization, and punishing unwanted behavior is often part of a system of pedagogy or behavioral modification which also includes rewards.

3. ADMINISTRATION OF PENAL SANCTIONS

Administration of penal sanctions, which is the duty of the court, is a highly complicated process Every day thousands offenders from various walks of life pass through criminal courts They are of many types some of them are professionals, calculating criminals, some others are sex offenders, a few are of inadequate personalities Most of the offenders are merely casual offenders They are all, however, human beings. A rational, scientific and individualized approach is needed to deal with them The society has every right to utilize its resources for self protection against destructive elements in its midst, but at the same time it cannot ignore the interest of the individual offender The sentencing

Judges or Magistrates have to conciliate claims of the society with the interest of the offender?

The period, since the beginning of the twentieth century has witnessed continuing tendency towards total rejection of revenge and retribution and to some extent deterrence as the aims of penal sanctions. The advancement in behavioral sciences and growth of scientific criminology have changed our notions of crime and punishment Today, the objective of the sentencing process is conceived as the protection of society against crime, and, at the same time, reformation and rehabilitation of offenders The old ideas of retribution and deterrence have not been completely eliminated. In fact they are more than implied in the system of criminal law and its process However, with the growing, awareness, towards crime and criminal in, India, reformative legislation like Probation of Offenders Act has been enacted but, at the, same time, one cannot fail to notice an implied acceptance of the theory of deterrence in such legislative devices as minimum, and mandatory sentences. The task before sentencing courts is delicate. The criminal law does not contain any explicit provision as to the objective of sentencing. In absence of statutory guidelines, the trial court looks for guidance in decisional law only to discover the restatement of its own dilemma, sometimes in more refined phrases

4. QUANTUM OF PUNISHMENT

The judiciary has been given a wide discretion in the matter of awarding the quantum of punishment. It may award the maximum or a less punishment. The statutorily fixed maximum for various offences operates as a limit on the discretion of the court. The courts are competent to pass any sentence below the limits prescribed by the legislators. But the legislators have not indicated what specific factors the court should take into account while passing a sentence on the convicted offender. In the absence of statutory criteria the decision of sentence is often based on attitude of Judge his/her own personal likes and dislikes and the judicial presidents.

The superior courts sometimes lay down judicial norms for sentencing decision. This function however, reluctantly performed. The study of the decisional law disclosed that, the courts, have replaced the statutory maxims by intuitively fixed limits of their own for each offence. The judicially conceived just punishment becomes in course of time a conventional sentence. The adequacy or inadequacy of sentence is determined by the extent of deviation of the trial court on either side of the convention sentence. The Supreme Court in Jagmohan Singh v. State of U.P. [3], interalia, was invited to dwell upon the constitutional validity of such a wide discretion forcefully argued before the five Judges. Bench that such discretion results in discrimination involves arbitrariness, violating of Article 14 and 21 of the Indian Constitution. The court rejected the argument and justified this wide discretion owing to the impossibility of laying down sentencing norm, as facts of no two cases are

similar and wrong discretion in the matter of sentence is liable to be corrected by superior courts.

The sentencing process has not been uniformed as the quantum of punishment given by courts for the same or similar offence varies apart. There are various factors, which play import role in deciding the appropriate sentence. The decision in Santa Singh vs State of Punjab[4] highlights the sentencing policy and guidelines in assessing the appropriate quantum punishment.

In Dhananjay Chatterjee v. State of W.B.[5] the Court has observed that shockingly large number of criminals go unpunished thereby increasingly, encouraging the criminals and in the ultimate making justice suffer by weakening the system's creditability. The imposition of appropriate punishment is the manner in which the Court responds to the society's cry for justice against the criminal. Justice demands that Courts should impose punishment befitting the crime so that the Courts reflect public abhorrence of the crime. The Court must not only keep in view the rights of the criminal but also the nights of the victim of the crime and the society at large while considering the imposition of appropriate punishment.

Similar view has also been expressed in Ravji v. State of Rajasthan[6]. It has been held that it is the nature and gravity of the crime and not the criminal, which are germane for consideration of appropriate punishment in a criminal trial.

Aggravating vs. Mitigating Factors- A perusal of some of the Supreme Court decisions involving death penalty would reveal that sudden impulse or provocation, uncontrollable hatred arising out of sex indulgence, family feud, land dispute, infidelity of wife or sentence of death hanging over the head of accused for a long period of time due to laws delay have been accepted as extenuating circumstances justifying less penalty of life imprisonment instead of death penalty On the other hand, the cases where the murder is deliberate, preplanned, premeditated, cold blooded, barbaric, gruesome, rape with murder are aggravating circumstances. The offender must be sentenced to death as a measure of social defense Selection of rarest of rare cases to impose death penalty depends on the way and the manner in which the police and the prosecutor present the case before the judge. Arguably, the approach of the court could be structured depending upon the reasons adduced by it for avoiding death penalty because of the procedural irregularities committed by the lower court denying some valuable rights to the accused".[7] The aggravating factors in preplanned, barbaric murder, gruesome murders and rape with murder of a girl child were not applied by the Supreme Court in a uniform way that varied case to case in light of mitigating factors. That is why, these guidelines of rarest of rare test do not say about the mitigating factors to commute death sentence into life imprisonment is fully depend on the personality of a judge to accept a mitigating factor to commute death sentence.

In a case, the court decided that long lapse of time was a ground to commute death sentence but in another case where accused was living in

prison for twenty years, the court did not commute death sentence on ground of delay Thus, the guidelines laid down in Bachan Singh's case[8], Machi Singh's case[9] and Sushi Mumru case[10] for the rarest of rare cases are far too subjective to be qualified for rare occasions as they do not specifically mention about these mitigating factors. Moreover, it gives the judges unbridled and unaccounted scope to put their own perceptions and fail to serve as a uniform sentencing policy for murder cases.

The Supreme Court, in Gurmukh Singh v. State of Haryana[11], enumerated the various considerations which will be taken into account while determining the sentence, which reads as under:- (a) Motive or previous enmity, (b) Whether the incident had taken place on the spur of the moment, (c) The intention knowledge of the accused while inflicting the blow or injury, (d) Whether the death ensued instantaneously or the victim died after several days, (e) The gravity dimension and nature of injury, (f) The age and general health condition of the accused, (g) Whether the injury was caused without pre-meditation in a sudden fight, (h) The nature and size of weapon used for inflicting the injury and the force with which the blow was inflicted, (i) The criminal background and adverse history of the accused, (j) Whether the injury inflicted was not sufficient in the ordinary course of nature to cause death but the death was because of shock, (k) Number of other criminal cases pending against the accused, (l) Incident occurred within the family members or close relations, (m) The conduct and behaviour of the accused after the incident. Whether the accused had taken the injured the deceased to the hospital immediately to ensure that he/she gets proper medical treatment?

These are some of the factors which can be taken into consideration while granting an appropriate sentence to the accused. The list of circumstances enumerated above is only illustrative and not in determining the length of sentence of imprisonment, aggravating factors such as degree of cruelty, extent of harm and previous criminal record are taken note of. A variety of mitigating factors go in fixation of sentence. Provocation, age and sex of offender are considered in varying degree. Plea of guilt and lack of previous conviction also sometimes receive attention of the courts. In case of fine the ability to pay operates is an important factor. Under the individualized sentencing system the principle of justice would be least offended if there were a rational basis for differentiation, viz, offenders background, personality and his potential for reformation or recidivism. Awarding the proper and appropriate sentence to the accused is the bounden obligation and duty of the court. If one judge decides a particular circumstance as mitigating this would not (except for a meager precedential value) prevent another judge from ignoring the aspect as irrelevant. The endeavor of the court must be to ensure that the accused receives appropriate sentence, in other words, sentence should be according to the gravity of the offence.

5. A NEW TRACK FOR CAPITAL PUNISHMENT

A recent trend in the evolution of jurisprudence around the death penalty in India may reset judicial thinking around sentencing and have long-term rami-fications in the awarding of capital punishment. Over the last six months or so, while dealing with appeals against confi-rmation of the death sentence, the Supreme Court of India has examined sentencing methodology from the perspective of mitigating circumstances more closely. The Court has also initiated a *suo motu* writ petition (criminal) to delve deep into these issues on key aspects surrounding our understanding of death penalty sentencing. As such, it is clear that the present trajectory of judicial thinking will not only reason the fundamentals of the rarest of rare principle but also lead a new wave of thinking in the jurisprudence around capital punishment.

6. SENTENCING LAPSES

Capital punishment once delivered by the court of sessions ("sentencing court") is required under law, specially Chapter 28 of the Code of Criminal Procedure, to be confi-rmed by the jurisdictional High Court ("confi-rming court"). The development of case laws on the point of sentencing has emphasised that sentencing cannot be a formality and that the sentencing court must make a genuine effort to hear the accused on the question of sentence. Bachan Singh vs State of Punjab[12] (1980), the leading case on this point, calls for mitigating and aggravating circumstances to be balanced against each other and laid down the principle that the death penalty ought not to be awarded unless the alternative of life imprisonment is "unquestionably foreclosed". Subsequent cases have developed this position to that of the state (which is the prosecuting agency) having the onus to lead evidence to establish that there is no possibility of reformation of the accused for the sentencing court to impose capital punishment. It is also an equally well-established legal principle that in a sentencing hearing, the accused must necessarily be provided with sucient opportunity to produce any material that may have bearing on the sentencing exercise. When read in conjunction with the ratio decadent of the Bachan Singh Case[13], it is incumbent upon the sentencing court and the confirming court to ensure that the question of reform and rehabilitation of a convicted person has been examined in detail for these courts to come to a definitive conclusion that all such options are unquestionably foreclosed.

In spite of such judicial guidance developed over four decades, studies have shown that when a group of former judges was asked what it considered as a rarest of rare case, the judges gave personalised, subjective and divergent explanations. A report by the National Law University Delhi's Project 39A (earlier known as the "Centre on the Death Penalty") titled 'Matters of Judgment' found that there is no judicial uniformity or consistency when it comes to awarding the death sentence. In the report titled 'Death Penalty Sentencing in Trial Courts', -findings reported from a study of cases involving death sentencing

between 2000 and 2015 in Delhi, Maharashtra and Madhya Pradesh have showed that courts have been lax in assessing the aspect of reformation while undertaking the sentencing exercise.

7. MITIGATION INVESTIGATION

On the back of such studies, the Supreme Court has begun to inquire into sentencing methodology with great interest. In Rajendra Pralhadrao Wasnik vs The State of Maharashtra[14] (2018), the Court was open to bringing on record material pertaining to the convict "about his conduct in jail, his conduct outside jail if he has been on bail for some time, medical evidence about his mental make-up, contact with his family and so on". Building on this, the Court, in Mofil Khan vs State of Jharkhand[15] (2021), the court held that the "the State is under a duty to procure evidence to establish that there is no possibility of reformation and rehabilitation of the accused" and that "the Court will have to highlight clear evidence as to why the convict is not -fit for any kind of reformatory and rehabilitation scheme."

Undoubtedly, the onus has been placed on the State to lead evidence to show that no reformation is possible and for the sentencing courts to be satisfi-ed that a thorough mitigation analysis was done before the death sentence is awarded. For a complete mitigation investigation, professionals trained in psychology, sociology and criminology are required in addition to legal professionals. Taking cognisance of the value of a holistic approach to mitigation investigation, the Court in Manoj & Ors vs State of Madhya Pradesh[16] (2022) issued directions to the State to place before the court all "report(s) of all the probation officer(s)" relating to the accused and reports "about their conduct and nature of the work done by them" while in prison. More importantly, the order also directs that a trained psychiatrist and a local professor of psychology conduct a psychiatric and psychological evaluation of the convict.

8. *SUO MOTU* WRIT PETITION

On March 29, 2022, a Bench of the Supreme Court led by Justice U.U. Lalit (along with Justices S. Ravindra Bhat and P.S. Narasimha) was hearing an interlocutory application -led on behalf of a death sentence convict seeking permission for a mitigation investigator from Project 39A be provided permission to conduct interviews and access material pertaining to the prisoner. While doing so, the Court recorded a set of observations around the questions of what may constitute mitigating circumstances, the role of a probation officer in assisting the Court and the potential value addition of a mitigation investigator to the sentencing exercise. These observations now form the basis of a suo motu writ petition (criminal) which will be heard separately and comprehensively on these aspects. The views of the Attorney General representing the Union of India as well as those of the National Legal Services Authority have been sought in this matter.

9. ONUS ON COURTS

Nevertheless, it is undeniable that there is a new wave of thinking in this hitherto underexplored domain of sentencing, which forms a key pillar of judicial work. The intervention of the Supreme Court of India in, hopefully, framing guidelines around incorporation of a mitigation analysis and consideration of psycho-social reports of the prisoner at the time of sentencing is timely and necessary. As a result, the responsibility of the sentencing and confi-rming courts will now be greater in ensuring that no death sentence is manually awarded or routinely confi-rmed. The entire judicial exercise that has culminated in the institution of the suo motu writ petition will only go to strengthening the doctrine of the rarest of rare, as laid down in the Bachan Singh case and, thereby, reinstating fairness in the death penalty sentencing exercise.

10. CAPITAL PUNISHMENT

Capital punishment, also known as the death penalty, is a state-sanctioned practice of killing a person as a punishment for a crime. The sentence ordering that an offender is to be punished in such a manner is known as a death sentence, and the act of carrying out the sentence is known as an execution. A prisoner who has been sentenced to death and awaits execution is condemned and is commonly referred to as being “on death row”.

Crimes that are punishable by death are known as capital crimes, capital offences, or capital felonies, and vary depending on the jurisdiction, but commonly include serious crimes against the person, such as murder, mass murder, aggravated cases of rape (often including child sexual abuse), terrorism, aircraft hijacking, war crimes, crimes against humanity, and genocide, along with crimes against the state such as attempting to overthrow government, treason, espionage, sedition, and piracy, among other crimes. Also, in some cases, acts of recidivism, aggravated robbery, and kidnapping, in addition to drug trafficking, drug dealing, and drug possession, are capital crimes or enhancements. Etymologically, the term capital (lit. “of the head”, derived via the Latin capitalis from caput, “head”) refers to execution by beheading, but executions are carried out by many methods, including hanging, shooting, lethal injection, stoning, electrocution, and gassing.

As of 2022, 54 countries retain capital punishment, 109 countries have completely abolished it de jure for all crimes, 7 have abolished it for ordinary crimes (while maintaining it for special circumstances such as war crimes), and 25 are abolitionist in practice. Although most nations have abolished capital punishment, over 60% of the world’s population live in countries where the death penalty is retained, such as China, India, parts of the United States, Singapore, Indonesia, Pakistan, Bangladesh, Nigeria, Egypt, Saudi Arabia, Iran, Japan, and Taiwan.

Capital punishment is controversial in several countries and states, and

positions can vary within a single political ideology or cultural region. Amnesty International declares that the death penalty breaches human rights, stating "the right to life and the right to live free from torture or cruel, inhuman or degrading treatment or punishment." These rights are protected under the Universal Declaration of Human Rights, adopted by the United Nations in 1948. In the European Union (EU), Article 2 of the Charter of Fundamental Rights of the European Union prohibits the use of capital punishment.[10] The Council of Europe, which has 46 member states, has sought to abolish the use of the death penalty by its members absolutely, through Protocol 13 of the European Convention on Human Rights. However, this only affects those member states which have signed and ratified it, and they do not include Armenia and Azerbaijan. The United Nations General Assembly has adopted, throughout the years from 2007 to 2020, eight non-binding resolutions calling for a global moratorium on executions, with a view to eventual abolition.

11. CAPITAL PUNISHMENT IN THE INDIAN PENAL CODE

Section under IPC or other law	Nature of crime
121 of IPC	Treason for waging war against Government of India
132 of IPC	Abetment of Mutiny actually committed
194 of IPC	Giving or fabricating false evidence with intent to procure a conviction of a capital offence
195A of IPC	Threatening or inducing any person to false evidence resulting in the conviction and death of an innocent person
302 of IPC	Murder
305 of IPC	Abetment of suicide of child or insane person
307 (2) of IPC	Attempted murder by a serving life convict
364A of IPC	Kidnapping for Ransom
376A of IPC	Rape and injury which causes death or leaves women in a persistent vegetative state
376AB of IPC	Rape of a child below 12 years
376DB of IPC	Gang rape of a child below 12 years of age
376E of IPC	Certain repeat offences in the context of rape
396 of IPC	Dacoity with murder in cases where a group of five or more individuals commit dacoity and one of them commits murder in the course of that crime, all members of the group are liable for the death penalty.

12. CONCLUDING OBSERVATION

To operating the sentencing system, law should adopt the corrective machinery or deterrence based on factual matrix. Sentencing process stern where it should be, and tempered with mercy where warrants to be The facts and given circumstances in each case, the nature of the crime, the manner in

which it was planned and committed, the motive for commission of the crime, the conduct of the accused, the nature of weapons used and all other attending circumstances are relevant fact which would enter into the area of consideration. It is the duty of every Court to award proper sentence having regard to the nature of the offence and the manner in which it was executed. The sentencing Courts are expected to consider all relevant facts and circumstances bearing on the question of sentence and proceed to impose a sentence commensurate with the gravity of the offence.

Awarding punishment in our legal system demands a full and open debate and clear guidelines that would be in consonance with the modern penological thinking and emerging constitutionalism. There is no legal system that is flawless Judges are not divine but human beings of flesh and blood that sometimes make flawed analysis, reach incorrect conclusions and give wrong decisions. Thus in order to make process of judicial sentencing more rational and effective, it should involve the balance of Retribution, Reformation and Deterrence terms not only of the court and the offender, but also of the values in which in takes place and is balancing of these purpose of punishment, first one and then another receives emphasis as the accompanying conditions change.

❑

Refrences

1. Dr. Bhavish Gupta, Punishment and Sentencing Policy in India: An Appraisal, Ideal Journal of Legal Studies, Published by Ideal Institute of Management and Technology & School of Law, Affiliated to G.G.S. I.P. University, Dwarika, Delhi, Vol. No. 07, Pg. No. 35-38.
2. https://www.loc.gov/law/help/sentencing-guidelines/india.php, visited on July 19, 2016.
3. AIR 1973 SC 947; 4. AIR 1975 SC 2386; 5. (1994 (2) SCC 220); 6. (1996) 2 SCC 175
7. Babubhai Udesinh Parmar v. State of Gujarat, DOJ-24/11/06, Cri Appeal No. 1635 of 2005, SC
8. 1983 Ch. I.J. 636; 9. 1983 Ch. I.J. 1457 (SC); 10. 2004 Ch. I.J. 658 (SC); 11. 2009 (11) SCALE 688
12. Suresh Chandra Bahri v. State of Bihar, AIR 1994 SC 2420. “This sentencing is bound to occur because of the varying degrees of seriousness in the offence and/or varying characteristics of the offender himself. Moreover, since no two offences or offences can be identical the charge or label of variation as disparity in sentencing necessarily involves a value based judgment, i.e., disparity to one person may be a simply justified variation to another. It is only when such a variation takes the form of different sentences for similar offenders committing similar offenses that it can be said to desperate sentencing.”
13. Manuraj S. Ram, “A new track for capital punishment jurisprudence”, Published in the Hindu, New Delhi Edition dated 07/05/2022

Meenu Kumari

Use of EVM in voting process : Features & Safety of Electronic Voting Machine

An election is a way people can elect their candidates in representative democracy or other form of government.Elections in democracy can be direct or indirect. According to Abraham Lincoln, "Democracy is a government of the people, by the people, and for the people." In Indian political system, every citizen has a Right to vote and elect their leaders. In Reynolds v. Sims, 377 U.S. 533, 555 (1964), Chief Justice Earl Warren stated the following: "The right to vote freely for the candidate of one's choice is of the essence of a democratic society, and any restrictions on that right strike at the heart of representative government."

For healthy democracy, free and fair election are needed. But in a varied nation like India, holding free and fair elections is not so simple. The**Election Commission of India** is in control of administering the voting process in India. There are mainly 4 types of direct elections which occur in India.

Members of the:

- Members of parliament in Lok Sabha & Rajya Sabha
- Members of State Legislature assemblies
- Members of State Legislature Councils
- Members of Panchayat or Municipalities

Voting process before using technology in Election are as follows:

- India used proper paper ballots and hand counting before deploying computerised voting machines.
- The ballot paper handed over to the voters.
- Every single voter would walk into a room.
- There would separate boxes for each candidate and voters would drop the ballot paper of their choice into the box.

But as time passed, the method has changed and advent-grade. The EVM method was introduced and this method is more reliable as compare to paper ballot method.

History of EVM

- "Electronics Corporation of India Ltd. (ECIL), Hyderabad, was tasked with designing and developing it after it was first conceived by the Election Commission in 1977."

On August 6, 1980, the Election Commission demonstrated a prototype to

representatives of political parties. Bharat Electronic Ltd. (BEL), Bangalore, was co-opted with ECIL to manufacture them. The Supreme Court of India withdrew the 1982 general election in Kerala when EVMs were used for the first time since there was no specific statute requiring their use. Parliament amended the Representation of the "People Act, 1951 in 1989 to include a provision for the use of electronic voting machines (EVMs) in elections." It was used in Madhya Pradesh, Rajasthan, and Delhi in 1998. In 1999, it was extended to 45 parliamentary districts, and in the February 2000 Haryana Assembly elections, it was extended to 45 assembly districts. All assembly constituencies in Tamil Nadu, Kerala, Pondicherry, and West Bengal employed electronic voting machines for the state assembly elections held in May 2001. Since then, the Commission has used EVMs in every State Assembly election. Firstly in 2004 General Election of Lok Sabha in all 543 Parliamentary constituencies EVMs (more than one million) were used.

The Design & security of EVMs

The EVM mainly consists of two units, the control unit and the voting unit. A five-meter cable connects these two devices.

The control unit is used to control the voting units, which in turn stores the results after the votes have been counted, while the voting unit is primarily used by the voter to cast their ballot using the indicated buttons. Seven section LED screens are used to display it.

The regulator used in the EVM has its own operating program, which is permanently etched into the silicon by the manufacturer during production. Therefore, once the driver is created, nobody—not even the manufacturer—can update this software. A typical 6 volt alkaline battery, produced by Bharat Electronics Limited in Bangalore and Electronics Corporation of India Limited in Hyderabad, powers the EVMs. EVMs of this design can therefore be utilised in any location in the nation where there isn't a power supply infrastructure.

The EVM has a maximum capacity of 3840 votes and can handle 64 candidates at once. A voting unit may have a maximum of four units connected in parallel and may contain no more than 16 candidates. If the number of candidates exceeds 64, the conventional ballot/box method will be used for voting. In this case, the candidate cannot cast more than one vote, even if he wants to, he can press this vote button as many times as he wants. A vote is automatically recorded for a candidate after they hit a certain button on the voting unit, and the system is then automatically locked. Therefore, there is no record of voting for the same candidate each time the button is pressed. EVMs similarly guarantee that the "one person, one vote" premise is upheld.

The old M1 and M2 versions are replaced by the M3 version with VVPAT. With the help of EVMS tracking software, the Election Commission easily monitored the EVMs. This system easily tracks his digital authentication identity and physical presence. EVMs are tempering machines that contain several layers of seals and the Election Commission has issued these tempering machines that have built-in hardware and software that allows only

a particular unit to work with a particular voting unit. India's electronic voting machines are "non-network stand-alone machines".

In 2009, BJP political leader LK Advani first raised questions about the security features of electronic voting machines.Subramanian Swamy later filed a petition in the Delhi High Court challenging the usage of EVMs in their existing configuration. Incidentally, the court did not do much or give any direction to the Election Commission in this matter. The Election Commission will now utilize Voter Verified Paper Audit Record (VVPAT), which will be linked to EVMs gradually and fully implemented by 2019 after Subramanian Swamy filed an appeal with the Supreme Court in October 2013.

When VVPAT (EVM and VVPAT) was introducedso many questions were raised about the security of EVMs, the Election Commission appointed a committee whose main task was to link EVMs with a paper trail machine so that voters could get proof of which party they voted for. Thanks to this, the voter can check his vote immediately after voting. The first instance of this VVPAT (Verified Paper Audit Trail) document was in the Noksen Assembly constituency in Nagaland in 2013. The Election Commission utilised the VVPAT system for the most recent assembly elections in all of Goa's constituencies. Only a small number of constituencies, including those in Uttarakhand, Uttar Pradesh, Manipur, and Punjab, utilised the voter track system.

How to Use Electronic Voting Machine

Using EVM is a very easy task. The EVM control unit is here at the presiding officer or booth polling station while the voting unit is located inside the polling booth. This voting unit has blue buttons and is marked horizontally in front of the symbol of the respective party and its name. While the control unit provides the booth master with a device to operate the button marked as "Ballot" so that the next voter can step inside and cast his vote. Where the ballot was previously issued.

It happens to allow the polling unit to cast another vote that is in the queue. In this case, in order to cast his vote, the voter must press the front blue button on the given voting unit once and can use the candidate and his symbol on the front for help. Once the voter casts his vote, the responsible election officer presses the "Close" button on this control unit. Due to this, the EVM will be locked before further voting. Furthermore, after the voting is closed, the voting unit is disconnected from the control unit and they are kept separately. Votes are recorded by the voting unit.

When the voting is over, the presiding officer shall give the tally of the votes to all polling agents stationed in that booth for counting. When the counting of votes is going on, then the total votes are tallied and if there is any discrepancy, then these counting agents present that error to the chairman. By the way, during the vote counting, the results can be easily viewed using the 'Result' button. By the way, there are two security measures to prevent you from pressing the "Result" button until the counting of votes officially begins.

(a) The officer in charge of the same polling station must first press the "Close" button before this button can be pressed.

(b) This button is kept secret and sealed; it can only be unlocked in the computing centre in front of everyone working in the specified office.

Advantages of Electronic Voting Machine

Now let us know about some advantages of EVM.

- Although the initial cost of EVM is a bit high, but if we think for the long term then it is very cost effective.
- With its use, many trees have been prevented from being cut, which were used for the ballot system.
- Battery is used in this, so it can be used anywhere.
- It is very light so it can be easily carried anywhere.
- It does not cost much to use as compared to Ballot Voting.
- In this, counting of votes is very easy and quick too.
- Illiterate people can use it much better.
- In this, the possibilities of manipulation of voting are very less and problems like theft are also less.
- Malfunction in EVM machine

Some special features of EVM

1. It is absolutely tamper free and it is very easy to operate.
2. It has been programmed in such a way that after voting once, you cannot vote for the same candidate as much as you want. The program that controls the functions of the control unit is etched into the microchip on a "one-time programmable basis". Once destroyed it cannot be read, copied or modified.
3. The microchip in it has been designed in such a way that once it is programmed, it is used for only one task, neither it can be changed nor copied. Is. That's why it is very secure from the point of view of security.
4. The possibility of invalid votes in EVM machines is very less.
5. It speeds up the calculation process and at the same time reduces the printing cost.
6. Since the EVM machine is battery operated, it can be easily used in areas without electricity.
7. If the number of candidates does not exceed 64, then elections can be conducted using EVMs in such places.
8. A maximum of 3840 votes can be recorded in an EVM machine.

Process of closing EVM (How is EVM closed after Election)

After the last voter casts his vote, the in-charge of the "Control Unit" presses its "close" button. Thereafter no vote can be recorded in the EVM. Furthermore, the "polling unit" is separated from the "control unit" after the election is over. The result is displayed when the result button is pressed during counting.

Safety of EVM after Poll

Every EVM machine is kept under strict surveillance before and after the poll. After casting the vote, the polling officer seals the machine in the presence of many people in the evening. Every EVM machine is sealed with a special paper. These papers are also specially made like currency notes. Like a currency note, there is a special number on the top of each paper. After sealing with papers, the hole in the output part of each machine is closed with the help of thread and then it is sealed with paper and hot lacquer by applying a special brass seal. After sealing each EVM machine is brought to the counting center under the security cover of a Chief Minister or Prime Minister. Every machine at the counting centers is kept under strict guard till the date of counting.

Findings

- If we think about the use of EVMs in long-run, then it is going to prove to be very cost-effective. Although its initial cost was a bit high, between Rs 5,000 to 6,000 for each machine, although it has been used comfortably for about 15 years.
- These machines do not require electricity to run and they can run on batteries. Wherein these EVMs are very lighter and portable if we compare them with big ballot boxes.
- Apart from this, the vote-counting process has become very fast with the use of EVMs, where it used to take several days for vote counting, now votes are counted within a few hours.
- Before the commencement of the poll, the Presiding Officer shows that no vote is already recorded in the machine by pressing the total button of the machine in front of all the polling agents. After this, a mock poll of voting is done, in which the presiding officer casts a vote and also shows whether the voting machine is working properly or not. After doing this the vote cast is erased by pressing the clear button. After that the result section in the control unit is sealed and after that the polling is started.

We found some controversies also:

- Security is not sure if it can be hacked.
- The time lag between voting and counting of votes is at risk of possible manipulation, as ballots are physically stored after voting.
- Technical problems, software malfunctions and errors may occur.
- Hardware can also cause problems if the EVM is not handled with care.
- Authenticity is unclear, voters cannot verify their votes.

Reference:

https://eci.gov.in/evm
https://www.bankbazaar.com/voter-id/all-about-evm.html
https://en.wikipedia.org/wiki/Electronic_voting
prep.in-indianpolitynotes; www.brooking.edu; journalsofindia.com
weebly.com

Satyam Chansoriya

Expeditious Criminal Justice : Urgently Needed

Ugcnet/set / research scholar

Speedy trial is the essence of criminal justice and delay constitutes denial of it. While on the one hand reasonably expedious trial is an integral part of the fundamental right to life and liberty enshrined in article 21 of the Constitution of India, *Hussainara Khatoon's case*[1] the public interest also demands that criminal justice should be swift and sure.The guilty should be punished while events are still fresh in public mind and that the innocent should be absolved as early as is consistent with a fair and impartial trial. *M.S.Sheriff's case*[2] Section 309 of the Code of Criminal Procedure (in short 'the Code') mandates that in every trial, the proceedings should be held as expeditiously as possible, and in particular, when the examination of witnesses has once begun, the same should be continued from day-to-day until all the witnesses in attendance have been examined, unless the Court finds the adjournment of the same by the following day to be necessary for reasons to be recorded. However, this rule is observed more in breach than compliance. Various factors which contribute to the delay in a trial of a criminal case may be identified as under:

- Delay in framing of charges
- Delay in service of summons on the witnesses
- Non-production of accused before Court when he is in custody
- Delay due to dispute regarding admissibility of documents/oral evidence
- Delay due to non-cooperation of defense counsel
  Delay due to prolix cross-examination

In order to dispense expeditious justice to accused as well as the victim, it is incumbent upon the Court to find out remedies so as to eliminate delays occasioned due to aforesaid factors. As regards delay in framing of charges, it is very often due to non-appearance of the accused on the date when charge has to be framed. In *Shrikishan v The State of M.P.*[3]*,* it has been laid down by our own High Court that if counsel is there, arguments on

charge can be heard and charges can be framed despite the fact that accused has not been produced from the jail. In this case, it has further been made clear that counsel appearing for the defense cannot lawfully refuse to argue on the question of framing of charges on the ground that his client has not been produced from jail.

Laxity on the part of the police in service of summons of witnesses and non-appearance of witnesses even after service of summons contributes to maximum delay in a trial. the Apex Court has impressed upon in *Shailendra Kumar vs State of Rajasthan*[4], that in sessions cases, presence of investigating officer in court at the time of trial is must. It is his duty to keep the witnesses present. If there is failure on part of any witness to remain present, then it is the duty of the Court to take appropriate action including issuance of bailable, non-bailable warrants as the case may be. It should be well understood that accused cannot be allowed to frustrate the prosecution, and victims of the crime cannot be left in lurch.

Courts are required to take steps for pulling up the officials responsible for non-service of summons. The Court in a appropriate case may proceed against an erring officer under section 10 and 12 of the Contempt of Courts Act, 1972 because as laid down by Hon'ble Justice R.C. Lahoti, in Salim @ Sallo v. State of M.P.[5],default in service of summons may tantamount to obstructing the course of administration of justice.

In cases where the witnesses do not turn up after due service of summons, summary procedure as prescribed under section 350 of the Code can also be resorted to in appropriate cases so that witnesses who do not understand the seriousness of turning before the Court after service of summons may be taken to task. The courts are not meant to dispose of the case but to decide it and if a witness does not respond to the court's process then his presence should be procured by coercive methods instead of closing the case. *Jitendra Singh v. State of M.P*[6].,

Non-production of the accused before the Court during trial is also a major reason which hampers the progress of a case. As put classically in *Salim's case* (supra) 'it is fortunate for the courts holding Sessions trial to see that the prosecution witnesses have made their appearance; but pleasure of good fortune cannot be enjoyed for a moment because the misfortune of non-production of the accused from judicial custody eclipses the progress of trial tying down the hands of Judge prepared to proceed ahead.' In such a situation, the Court is required to act with promptitude and the officials responsible for non-production of the accused should be taken to task and it should be impressed upon them that dispensation of timely justice is a matter to be given priority over other routine duties.

It has been experienced that many a times, trial is delayed because of dispute relating to the admissibility of document or to the admissibility of oral evidence. Sometimes, the matter is taken to the Revisional Court which

further compounds the delay. In order to avoid delay on these counts, it has been ordained by the Apex Court in *Bipin Shantilal Panchal v. State of Gujarat*[7], that whenever an objection is raised during evidence recording stage regarding the admissibility of any material or item of oral evidence the trial Court can make a note of such objection and mark the objected document tentatively as an exhibit in the case (or record the objected part of the oral evidence) subject to such objections to be decided "at the last stage in the final judgment". If the Court finds at the final stage that the objection so raised is sustainable, the Judge can keep such evidence excluded from consideration.

Lack of requisite degree of cooperation by defense counsel again is a potent factor which many a times is responsible for delay. Section 309 of the Code commands that once examination of witnesses has started, the trial must be continued from day to day until all witnesses in attendance have been examined unless the Court finds adjournment necessary for reasons to be recorded. However, it is not uncommon to find cases where adjournments are granted for asking. Expressing its distress and dissatisfaction over this situation, the Apex Court observed in State of *U.P. v Sambhu Nath Singh*[8], that it is almost a common practice and regular occurrence that trial Courts flout the said command with immunity. Even when witnesses are present cases are adjourned on far less serious reasons or even on flippant grounds. Adjournments are granted even in such situations on the mere asking for it. Quite often such adjournments are granted to suit the convenience of the Advocate concerned. To handle this situation the Apex Court has ordained as under:

> 'At any rate, inconvenience of an Advocate is not a "Special reason" for bypassing the mandate of Section 309 of the Code. If any Court finds that the day-to-day examination of witnesses mandated by the legislature cannot be complied with due to the non co-operation of accused or his counsel, the Court can adopt any of the measure indicated in the sub-section i.e. remanding the accused to custody or imposing cost on the party who wants such adjournments (the cost must be commensurate with the loss suffered by the witnesses, including the expenses to attend the Court). Another option is, when the accused is absent and the witness is present to be examined, the Court can cancel his bail, if he is on bail (unless an application is made on his behalf seeking permission for his counsel to proceed to examine the witnesses present even in his absence provided the accused gives an undertaking in writing that he would not dispute his identity as the particular accused in the case.) It is no justification to glide on any alibi by blaming the infrastructure for striking the legislative mandates embalmed in Section 309 of the Code.'

Prolix cross-examination of the witnesses, many a times till the witness

gets totally frustrated, is also a common feature of criminal trials. This has the effect of delaying the trial. The judge mostly remains a mute spectator of this ordeal. However, the judge while hearing a case should not act as an umpire or referee, rather as explained by the Apex Court in *Ramchander v. The State of Haryana*[9], If a Criminal Court is to be an effective instrument in dispensing justice, the presiding judge must cease to be a spectator and a mere recording machine. He must become a participant in the trial by evincing intelligent active interest by putting questions to witnesses in order to ascertain the truth. But this must be done without unduly trespassing upon the functions of the public prosecutor and the defense counsel, without any hint of partisanship and without appearing to frighten or bully witnesses. Any questions put by the Judge must be so as not to frighten, coerce, confuse or intimidate the witnesses". In *Raju @ Rajendra Prasad*[10] dealing with the power of the trial Court U/S. 311 Cr. P.C. and U/S. 165 of Evidence Act. It has been impressed that trial Court has ample power and discretion to interfere and control the conduct of trial properly, effectively and in the manner as prescribed by law.

Pointing out the duty of a Judge while examining a witness the Apex court expressed in *Makhan Lal Bangal v. Manas Bhunia and others*[11] that - 'A Judge presiding over a trial needs to effectively control examination, cross-examination and re-examination of the witnesses so as to exclude such questions being put to the witnesses as the law does not permit and to relieve the witnesses from the need of answering such questions which they are not bound to answer. Power to disallow questions should be effectively exercised by reference to Sections 146, 148, 150, 151 and 152 of the Evidence Act by excluding improper and impermissible questions. The examination of the witnesses should not be protracted and the witness should not feel harassed. The cross-examiner must not be allowed to bully or take unfair advantage of the witness. Though the trials in India are adversarial, the power vesting in the court to ask any question to a witness at any time in the interest of justice gives the trial a little touch of its being inquisitorial. Witnesses attend the court to discharge the sacred duty of rendering aid to justice. They are entitled to be treated with respect and it is the judge who has to see that they feel confident in the court. An alert judge actively participating in court proceedings with a firm grip on oars enables the trial smoothly negotiating on shorter routes avoiding prolixity and expeditiously attaining the destination of just decision. The interest of the counsel for the parties in conducting the trial in such a way as to gain success for their respective clients is understandable but the obligation of the presiding judge to hold the proceedings so as to achieve the dual objective - *search for truth and delivering justice expeditiously* - cannot be subdued. Howsoever sensitive the subject matter of trial may be; the court room is no place of play for passions, emotions and surcharged

enthusiasm.' Apart that, the Apex Court in *Raghunandan v. State of U.P.*[12] has clearly propounded that in exercise of its powers u/s 165 of the Evidence Act, the Court in order to secure the ends of justice can use statement of a witness recorded u/s 161 Cr.P.C. during examination of that witness irrespective of the prohibition imposed by Section 162 of the Code.

The aforesaid analysis simply focuses upon the major factors which are responsible for delayed justice in criminal cases. There may be some other factors also, including lack of effective management, and lack of infra-structural support which can be remedied by imparting managerial skills and upgrading infra-structure of the court. Lack of requisite sensitivity on the part of the judge handling the case may also sometimes result in neglect of the case contributing to delay. A mind set necessary to deal with something of utmost importance to the system of administration of justice as well as society is always needed coupled with a determination to proceed in the right direction.

❑

Reference

1. Hussainara Khatoon's case AIR 1979 S.C.1310)
2. M.S.Sheriff's case AIR 1954 S.C. 139)
3. Shrikishan v The State of M.P., 1991 M.P.J.R. S.N.12
4. Shailendra Kumar vs State of Rajasthan, AIR 2002 SC 270
5. Salim @ Sallo v. State of M.P,1989 MPJR HC 882
6. Jitendra Singh v. State of M.P, 1991 (2) MPJR 327.
7. Bipin Shantilal Panchal v. State of Gujarat, (2002)10 SCC 529
8. State of U.P. v. Sambhu Nath Singh, A.I.R.2001 S.C.1403
9. Ramchander v. The State of Haryana, AIR 1981 SC 1036
10. Raju @ Rajendra Prasad (2002CrLJ2367 M.P.)
11. Makhan Lal Bangal v. Manas Bhunia and others AIR 2001 SC 490
12. Raghunandan v. State of U.P., AIR 1974 SC 463

लेखक मंडल

डॉ. पुष्पलता तनेजा : एन-9, प्रथम तल, ग्रेटर कैलाश, पार्ट-1, नई दिल्ली-110048
मोबाइल : 9868984894

सतीश चंद्र रस्तौगी : पूर्व संयुक्त सचिव, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली
मोबाइल : 9415021742

डॉ. निरुपमा अशोक : पूर्व प्राचार्य, भगवानदीन आर्या कन्या महाविद्यालय, लखीमपुर खीरी, उत्तर प्रदेश

प्रो. (डॉ.) राकेश कुमार सिंह : प्रोफेसर एवं पूर्व संकायाध्यक्ष एवं विभागाध्यक्ष, विधि संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. मनीषा यादव : (सहायक प्रोफेसर), मोतीलाल नेहरू विधि महाविद्यालय, खंडवा (मध्य प्रदेश)

मनमोहन कालरा : एन.डी.-57, पीतमपुरा, दिल्ली-110034, **फोन :** 011-27312696

डॉ. चंद्र प्रकाश : असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, श्री राम सिंह धौनी राजकीय महाविद्यालय, जैंती, अल्मोड़ा (उत्तराखंड), **मोबाइल :** 9675072977 **ईमेल :** cpaagrkoti@gmail.com

सन्तोष खन्ना : प्रधान संपादक, 'महिला विधि भारती' पत्रिका, शालीमार बाग

नंदल हितैषी : प्रयागराज निवासी, निधन : मई 2018

रेनू माथुर : आवास 111-ए, मानसरोवर, डीपीएस के सामने, पाल रोड बाई पास, जोधपुर-34255, **मोबाइल :** 9649473939

डॉ. भगवानदास : विद्रोही भवन, मकरोनिया, सागर, मध्य प्रदेश-470004

डॉ. अर्चना प्रकाश : गोमती नगर लखनऊ, **मोबाइल :** 9450264638

अंकुर सिंह : हरदासीपुर, चंदवक, जौनपुर, उत्तर प्रदेश-222129, **मोबाइल :** 8367782654, **व्हाट्सअप :** 8792257267, **ईमेल :** ankur3ab@gmail.com

प्रो. मुक्ता त्रिपाठी : सहायक प्रोफेसर (हिंदी) बीएस अनंगपुरिया इंस्टीट्यूट ऑफ लॉ, फरीदाबाद

नेहा राठी : उपनिदेशक, राज्य सभा सचिवालय, संसद भवन, नई दिल्ली-110001

यशस्वी सिंह : सहायक प्रोफेसर, संस्थान सी.पी.जे.सी.एच.एस. एंड एस.ओ.एल.

डॉ. दिनेश बाबू : प्रिंसीपल, जय बुंदेलखंड, कॉलेज ऑफ लॉ, पनारी, ललितपुर-284403, **मोबाइल :** 9453182388

मीनू कुमारी : सहायक प्रोफेसर (विधि), बी.एस. अनंगपुरिया इंस्टीट्यूट ऑफ लॉ, फरीदाबाद

सत्यम् चंसौसिया : एडवोकेट, यूजीसी नेट / एम.पी. सेट रिसर्च स्कॉलर

फोन : 011-27491549
मोबाइल : 09899651272
09899651872

सदस्यता फॉर्म

विधि भारती परिषद्

बीएच-48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088

महिला विधि भारती पत्रिका यू.जी.सी. की सूची में पहले शामिल थी।
क्रमांक 156, पत्रिका संख्या 48462

कृपया मुझे विधि भारती परिषद् का सदस्य बनाने की कृपा करें। मेरा चैक/बैंक ड्रॉफ़्ट संलग्न है --

1.	वार्षिक सदस्य शुल्क	500/-- रुपए
2.	आजीवन सदस्य शुल्क	5,000/-- रुपए
3.	संस्थागत वार्षिक सदस्य शुल्क	500/-- रुपए
4.	संस्थागत आजीवन सदस्य शुल्क	20,000/-- रुपए

नाम : ....

शैक्षिक योग्यता : ....

व्यवसाय : ....

कोई प्रकाशित कृतियाँ : ....

स्थाई पता : ....

फोन (कार्यालय) : .... **(घर) :** ....

मोबाइल : .... **ई-मेल :** ....

नोट : विधि भारती परिषद् की सदस्यता के लिए शुल्क परिषद् के बैंक खाते में जमा कराया जा सकता है। कृपया शुल्क के साथ बैंक सेवा चार्ज 100/-- रुपए जमा कराएँ।

Vidhi Bharati Parishad : SBI SB Account No. 10115361055
IFSC Code : SBIN0003702

Our New Life Members

254. **Dr. Pratibha Chaudhry**
House No. 181, CH Scheme 74C,
Vijay Nagar, Indore-452010
255. **Ms. Chetali Solanki**
House No. 9, New Bhopal Pura
Near Padm Lighting, M.P.-313001
256. **Dr. Hemlata Saiwal**
Associate Professor
Department of Law
Sage University, Indore
257. **Smt. Priyanka Singh**
Assistant Professor
Jay Enclave Silver Spring,
Phase-I Township, Indore-452020
258. **Dr. Hemlata Sahiwal**
2/4, Usha Nagar Main
Ring Roaf, Indore-452009
259. **Mr. Raj Kumar Kardam**
154, Vigyapan Lok Apartments
Mayur Phase-I Extension, Delhi-91
260. **Shri Chanderpal Singh**
342, Skylark Apartments
Plot No. 35, Sector 6
Dwarka, New Delhi-110075
261. **Smt. Shefali Goutam**
Paraspar Nagar Main
Annapurna Road, Indore-452009
262. **Dr Sanjeev Kumar**
C-81, Sector 30, Noida-203001
263. **Smt. Aryavarti Saroj**
Flat no. 904, Tower1
iMac Heights, Vibhuti Khand
Gomti Nagar, Lucknow-226010
264. **Dr. S.S. Dass**
Assistant Professor
Centre for Juridical.Studies
Dibrugarh University
Dibrugarh-786004, Assam
265. **Dr. Sudarshan Verma**
Professor, IRWO IIA/64,
Mansarovar Bajana Sector P
Near Transport Nagar,
Lucknow-226012
266. **Dr. Minakshi Joshi**
Banla 9, Madhura, (Khat Road)
Ramayan Nagri, Bhandara-441904
267. **Smt. Sanju Lata**
Assistant Professor
Government Law College, Palli
268. **Dr. Niti Nipun Saxena**
D-37, Sampat Hills, Rau Bypass
Indore-452016
269. **Dr. Jyoti Mishra**
162, Manvata Nagar
Kanodia Road, Indore-452016
270. **Dr. Sunita Srivastava**
3-2, Pakiza Lifestyles
Near Bypass Khajrana,
Indore-452016
271. **Dr. Alka Sharma**
C-4/201, Capital Apartments,
Vasundhra Enclave, Delhi-110096
272. **Dr. Anjana Rao**
Dean of Adminstration,
Faculty of Law, Block no. 20,
Baba Mast Nath University,
Rohtak-124021
273. **Dr. Madhu Bala**
House No. 158/1,
Baba Farid Avenue,
Gurdaspur-143522, Panjab
274. **Dr. Chandra Prakash**
Assistant Professor (Sociology)
SRSD Govt. Degree College
Jainti (Almora) University Soban Sing Jeena, Almora (Uttrakhand)
275. **Ms. Renu**
K-292, Shakur Pur
Delhi-110034
276. **Dr. Sanskriti Mishra**
Assistant Professor
Sharda University
House No. H-901,Tower No. 3,
Paramount Floraville,
Sectow 137, Noida-201305
277. **Smt Neha Rathee**
Deputy Director
88D, First Floor
Kamla Nagar, Delhi-110007